1979

सोमसी

tharahkardu.in

बजौरा (कुल्लू) में महादेव मन्दिर

(कृपया पृष्ठ 78 पर प्रकाशित चित्र के नीचे दिया गया शीर्षक —
'ताबो गोम्पा में वैरोचन का भित्ति-चित्र' पढ़ें) ।

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 5 | अप्रैल, 1979 | अंक 2

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
तिलक राज

१८

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-*171009*

tharahkardu.in

सोमसी

अप्रैल, 1979

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		*(i)*
2.	हिमालय क्षेत्र में सती-प्रथा : एक विवेचन	–श्री पी० एन० सेमवाल	1
3.	हिमाचली लोक-साहित्य में राम	–डॉ० कांशीराम आत्रेय	7
4.	प्राचीन स्मारकों का रक्षण हिमाचल प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में	–श्री अमरनाथ खन्ना	16
5.	जोगणी	–श्री चन्द्रशेखर 'बेबस'	19
6.	कला पारखी एवं विजेता—मेरु वर्मा	–श्री अमरसिंह रणपतिया	26
7.	ताना म्हास्ते—महासू में सती प्रथा की एक गाथा	–श्री 'सलीम'	34
8.	कांगड़े के मृत्यु संस्कार	–डॉ० मनोहर लाल	39
9.	चित्र कला केन्द्र गुलेर : जहां 'कांगड़ा कलम' जन्मी	–डॉ० श्रीकान्त प्रत्यूष गुलेरी	50
10.	जिला ऊना की भाषाई स्थिति	–सरोज सांख्यायन	52
11.	चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : जीवन और व्यक्तित्व (२)	डा० पीयूष गुलेरी	59
12.	कांगड़ा घाटी में जगराता	–श्री रमेशचन्द्र मस्ताना	68
13.	कहलूर की जुब्बा प्रथा	–श्री हुकमसिंह ठाकुर	72
14.	पुस्तक समीक्षा	–श्री कृष्णचन्द्र शर्मा	75

tharahkardu.in

सम्पादकीय

आर्यों के भारत में प्रवेश करने पर जिस क्षेत्र में वे सर्वप्रथम रहे वह सप्त-सिन्धु के नाम से विख्यात है। वेदों के अधिकांश भाग की रचना सप्त-सिन्धु भू-खण्ड में वर्तमान पंजाब के मुख्य भाग मानते हैं। परन्तु वेदों के बहुत बड़े भाग में जो बादल, बिजली, पहाड़ों में घनघोर वर्षा, कड़ाके की सर्दी और वर्ष का सन्दर्भ है, वह पंजाब के मैदानी भाग से कदापि मेल नहीं खाता। वेदों में वर्ष की परिकल्पना भी मूलतः शरत् ऋतु से ही सन्निहित थी। जीवन के लिए 'शरदः शतम्' सौ सर्दी अर्थात् सौ वर्ष की कामना की गई है। और यह हिम-शीतल शरत् ऋतु पंजाब के मैदानी क्षेत्रों के अनुकूल नहीं है। पंजाब की संज्ञा और संकल्पना बहुत देर बाद की है। वेदों में इस नाम से संकेत नहीं है। विद्वानों ने उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में वेदों की व्याख्या की है। उन्होंने समस्त पंजाब को वह भूखण्ड स्थापित किया जहां वेदों के उल्लेख के अनुसार वेदों के मुख्य भाग की रचना हुई है। परन्तु इन ऋचाओं का रचना-स्थान निश्चित रूप से पर्वतीय क्षेत्र ही है। मैदानी क्षेत्र नहीं। अतः वेदों के सप्त सिन्धु का मुख्य भाग वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा साथ लगता काश्मीर और गढ़वाल का क्षेत्र है। यह आर्य-ऋषियों का निवास तथा जप स्थान रहा है। सिरमौर में परशुराम ताल, रेणुका झील, माण्डव्य ऋषि का तप-स्थान मण्डी, कुल्लू में वशिष्ट ऋषि का जप-स्थान वशिष्ट गांव का गर्म पानी का सरोवर भृगु-तूंग (जोत रोहतांग), व्यास कुण्ड, जमदग्नि का मलाणा, मनु की मनाली,, मण्डी में पराशर झील, धर्मशाला में भृगु का भागसु सरोवर आदि स्थान इन्हीं ऋषियों की यादगार हैं।

सप्त-सिन्धु को 'आर्यावर्त्त' भी कहा गया है। ऋग्वेद में व्यास नदी के अर्जिकीया नाम के सन्दर्भ से भी विद्वान लोग इसी क्षेत्र को आर्यावर्त्त का मुख्य भाग मानते हैं जिसका केन्द्र आर्यकी अर्थात् वर्तमान अर्की (सोलन जिला में) रहा हो, और सम्भवतः कुल्लू में व्यास नदी के विशाल क्षेत्र 'ऊझी' का भी अर्जिकीया से सम्बन्ध हो। हिमालय के पांच खण्डों में एक जालन्धर था। जालन्धर खण्ड का मुख्य भाग सपादलक्ष है, जालन्धर का मैदानी भाग नहीं। इसमें भद्रवाह (जम्मू काश्मीर) से लेकर गढ़वाल तक का क्षेत्र शामिल था। सपादलक्ष से अभिप्राय 'सवालाख' पहाड़ियों से भी माना जाता है जो इस क्षेत्र में पाई गई मानी जाती है। बाद के साहित्य में सपादलक्ष का अर्थ 'शिवालिक' ने लिया, जिसका सम्बन्ध शिव से अधिक जोड़ा गया। गद्दियों के क्षेत्र भरमौर को शिवभूमि कहा जाता है और इस क्षेत्र में नवाला की प्रथा शिवपूजा का विशिष्ट उदाहरण है। दूसरी ओर महाशिव की धरती महासू के नाम से प्रसिद्ध हुई। वर्तमान शिमला और सोलन जिले पहले महासू जिला के क्षेत्र थे। शिवरात्रि यहां का प्रमुख त्योहार है। इसी भू-भाग में बाद के साहित्य का प्रसिद्ध क्षेत्र त्रिगर्त पड़ता है जिसके कांगड़ा और उसके इर्द-गिर्द का बड़ा भू-भाग शामिल है जो सपादलक्ष का केन्द्र है। वेदों में एक महान युद्ध 'दास राज्ञ' का वर्णन आता है। जो

एक ओर वशिष्ट ऋषि द्वारा समर्थित सुदास और दूसरी ओर दस जनपदों के बीच हुआ जिन्हें विश्वामित्र का मार्गदर्शन प्राप्त था। यह युद्ध परुषणी नदी अर्थात् रावी नदी के किनारे हुआ था, जो आर्य और दासों के बीच संघर्ष का भी क्षेत्र माना जाता है। दास से अभिप्राय यहां के आदि-जातियों के लोगों से है जिन्हें दस्यु भी कहा गया है जिनमें कोल, किरात्. भील, किन्नर, असुर आदि शामिल हैं। ये इस क्षेत्र के मूल निवासी हैं। दस जनपदों के बीच पांच बड़े जनपदों में एक तृत्सु जनपद भी था जिनका मूल अधिकार क्षेत्र रावी नदी के पूर्व का भूखण्ड बताया जाता है। यही तृत्सु-क्षेत्र बाद में त्रिगर्त कहलाया होगा। स्पष्ट है कि जहां एक ओर सतलुज, व्यास और रावी का पहाड़ी क्षेत्र आर्यों और दस्यु जातियों के संघर्ष का अखाड़ा रहा है, वहां दूसरी ओर यह वही क्षेत्र है जहां वैदिक ऋषियों ने वेदों के मुख्य भाग की रचना की।

प्रस्तुत अंक में हिमाचल प्रदेश के अतीत के सम्बन्ध में कुछ रचनाएं प्रकाश में लाने का यत्न किया गया है। यद्यपि 'सोमसी' में विभिन्न विषयों पर छिटपुट रचनाएं प्रकाशित होती हैं परन्तु अब ऐसा प्रतीत होने लगा है कि भारतीय संस्कृति के अनेक मूल्यवान पक्ष इनके माध्यम से उजागर हुए हैं। अगले अंकों में भी हम इस परम्परा को बनाए रखने का यत्न करेंगे। प्रस्तुत अंक पाठकों तक किन्हीं अपरिहार्य कारणों से बिलम्ब से पहुंच रहा है, हम इस धृष्टता के लिए क्षमा प्रार्थी हैं। इस अंक के प्रूफशोधन में श्री बालकराम भारद्वाज का सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

—एम० आर० ठाकुर

हिमालय क्षेत्र में सती-प्रथा
एक विवेचन

—पी० एन० सेमवाल

मध्यकालीन भारत में सती की अमानवीय प्रथा काश्मीर से कन्या कुमारी तक व्यापक रूप से फैली थी, जहां राजाओं, महाराजाओं और सामन्तों की चिता पर सैंकड़ों की संख्या में रानियां और दासियां सती होती थीं, वहां कुलीन ब्राह्मण और क्षत्रियों की चिता पर जलने वाली स्त्रियों की संख्या कुछ कम न होती थी। मध्य कालीन विजय नगर राज्य के रन-वास, हैरम में सैंकड़ों भारतीय और विदेशी सुन्दरियां होतीं थीं। सम्राट् के मरने पर इन सुन्दरियों में से सैंकड़ों को उसकी विशाल चिता पर जलना पड़ता था या उनको जलाया जाता था। लगभग ऐसी स्थिति अन्य हिन्दु राज्यों में थी। अकबर के ख्याति-प्राप्त राजपूत मनसबदार राजा मार्नासह की 1914 ई० में धुर दक्षिण में मृत्यु होने पर उसकी चिता पर 60 रानियां और दासियां जल कर सती हुई थीं, हालांकि उसी के स्वामी अकबर ने कुछ दशक पहले शाही फरमान से इस जघन्य कृत्य को रोकने का प्रयत्न किया था। इस फरमान के फलस्वरूप राज्य-भय से औरंगजेब के समय तक जनसाधारण में इस प्रथा पर कुछ अंकुश रहा; परन्तु मुगल-सत्ता का ह्रास होने पर अठारहवीं सदी में इस प्रथा ने उग्र रूप धारण किया। रोती, चिल्लाती और विलखती स्त्रियों को पशु बल से मृत पति की चिता पर धकेला जाता था। तब धर्मान्ध हिन्दु-समाज की सम्वेदनशीलता इतनी कुंठित हो चुकी थी कि इन निरीह विधवाओं के प्रति कोई सामाजिक सहानुभूति नहीं थी। फलत: चिता की लपटों के सिवाय इनको अन्यत्र कहीं आश्रय नहीं था।

करेवा प्रथा

हिमालय क्षेत्र में इस प्रथा का इतना भयावह रूप प्रतीत नहीं होता है। इस क्षेत्र में यह प्रथा प्रधानत: राजवंश, सामन्तवर्ग और सम्भ्रान्त परिवारों तक ही सीमित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि आम जनता में यह प्रथा प्रचलित नहीं थी। यहां विधवा-विवाह की बहुत पुरानी प्रथा थी और इसको बुरा नहीं समझा जाता था। विधवा स्त्री अपने मृत पति के भाइयों में से किसी का भी वरण कर सकती थी या किसी अन्य पुरुष का वरण करने का भी उसको अधिकार था। ऐसी स्थिति में नये पति को मृत पति के परिवार को 'दस्तूर' के अनुसार 'रीत' का धन देना पड़ता था। यदि उसके परिवार में कोई उत्तराधिकारी न हो तो यह 'दस्तूर' धन राज्य को देना पड़ता था। इस धन को 'भखतल' कहते थे। विधवा-विवास की इस प्रथा को करेवा कहते थे। समाज इस प्रकार के सम्बन्ध को निष्पाप और निष्कलंक दृष्टि से देखता था। ऐसे समाज में विधवा के सती होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

मण्डी और कुल्लू के सती-स्तम्भ

हिमाचल प्रदेश के मण्डी नगर में कुछ सती-स्तम्भ थे जिन पर मृत राजाओं के नाम और उनकी चिता में सती होने वाली रानियों और दासियों की संख्या दी होती थी। जनरल कनिंघम ने सबसे पहले इन सती-स्तम्भों का अध्ययन किया। कनिंघम भारतीय पुरातत्व विभाग के संस्थापक निदेशक थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उन्होंने इन स्तम्भों का अध्ययन किया। स्थानीय बोली में इनको 'बरसेला' कहते हैं। ये स्तम्भ मण्डी सुकेत मार्ग पर स्थित थे। सम्भवतः अभी भी कुछ स्तम्भ विद्यमान हों। प्रत्येक राजा के मरने पर एक स्तम्भ स्थापित किया जाता था। यह स्तम्भ छः सात फुट ऊंची पत्थर की शिला होती थी। उसमें मृत राजा का चित्र राजसी ठाटबाट के साथ उत्कीर्ण किया जाता था। नीचे की पंक्तियों में राजा के साथ सती होने वाली रानियों, 'खवासों' और दासियों के चित्र उत्कीर्ण होते थे। राजा का नाम व उसकी निधन तिथि भी लिखी जाती थी। यह तिथि आरम्भ में लोक काल सम्वत् में उत्कीर्ण होती थी। इस सम्बत् का प्रयोग पश्चिमी हिमालय के सभी राज्यों में होता था। कल्हन को राजतरंगिणि में भी इसी सम्बत् का प्रयोग हुआ है। कनिंघम को दस स्तम्भ मिले थे। उनमें सर्वप्रथम हरिसेन का था जिसकी मृत्यु सन् 1637 में हुई थी और अन्तिम स्तम्भ जालमसेन का था। इसकी निधन तिथि सन् 1839 थी। इस प्रकार सन् 1637 से 1839 तक 202 वर्षों में कनिंघम की गणना के अनुसार 252 स्त्रियां मण्डी के दस राजाओं की चिता पर जलीं। प्रत्येक राजा की चिता पर औसत से 25 स्त्रियां भस्मीभूत हुईं। कैप्टन हार्कोर्ट ने कुल्लु की पुरानी राजधानी नगर में स्थित वहां के राजाओं की समाधियों का उल्लेख करते हुए बताया कि कई राजाओं की चिता पर 40 से 50 तक स्त्रियां सती हुईं थीं। नगर में भी सती-स्तम्भों पर मती होने वाली स्त्रियों के चित्र उकेरे हुए थे।

सन् 1628 में पुर्तगाली मिशनरी फादर फ्रैंसिस अजीवेदो श्रीनगर, गढ़वाल गया। उसके विवरण के अनुसार वहां के तत्कालीन राजा महीपति शाह के निधन पर 60 स्त्रियां उसकी चिता पर जलीं थीं। महीपति शाह की मृत्यु कुमाऊं के राजा त्रिमलचन्द के साथ युद्ध में हुई बताई जाती है। इस स्त्री संहार की तुलना में मण्डी व कुल्लु में होने वाली सती-क्रिया नगण्य प्रतीत होगी। इतनी बड़ी संख्या में स्त्रियों को जलाने के लिए कितनी बड़ी चिता बनाई जाती होगी, इसकी कुछ कल्पना ही की जा सकती है। ऐसा विश्वास करना कि ये स्त्रियाँ स्वेच्छा से चिता में प्रवेश करती होंगी, तर्क-संगत प्रतीत नहीं होता। निःसन्देह इनको बल-पूर्वक आग की लपटों में धकेला जाता होगा। वाद्य-वृन्दों के गगन-भेदी स्वर और लोगों के कोलाहल में इनकी चीख पुकार कौन सुन सकता था।

पर्यटक जी० विजने का वर्णन

ऐसी एक आंखों देखी घटना का वर्णन पर्यटक जी० विजने ने अपने यात्रा-विवरण में किया है। वह 1835 ई० में मण्डी नगर में आया। उसके प्रवास के समय उस नगर में एक स्त्री अपने पति की चिता पर सती हुई। विजने का कहना है कि मृत पति की विधवा उसकी अर्थी के पीछे रंग विरंगे परिधान पहने, खूब सजी-धजी लड़खड़ाती हुई चल रही थी। उसकी लड़खड़ाती चाल

से प्रतीत होता था कि उसको अफीम या भांग जैसे मादक पदार्थों से चेतना-शून्य करने का प्रयत्न किया गया था। अर्थी के साथ चलने वाला जन समूह ज़ोर-ज़ोर से भगवान जगन्नाथ के नाम का उच्चारण कर रहा था। एक ब्राह्मण बाहों से थामे उस स्त्री को सहारा दे रहा था। एक आदमी थाली मे अक्षत और सिन्दूर लिए उस अभागिनी के आगे-आगे चल रहा था। वह बार-बार थाली को उस स्त्री के आगे करता और वह अपनी दोनों हथेलियों को रंग कर उस आदमी के कन्धों को थापती। लोग हाथ जोड़ कर उससे आर्शीवाद ले रहे थे। वह नशे में अर्धचेतना में होते हुए भी अपनी भयावह स्थिति से अनभिज्ञ नहीं थी। उसके मुख पर भय, आत्म-त्रास और शून्यता के चिन्ह स्पष्ट थे। व्यास नदी के किनारे चिता के ऊपर घास-फूस की एक झोंपड़ी सी बनाई गई और सबसे पहले उसको इसके अन्दर बिठाया गया और फिर उसके पति का शव रखा गया। उसका सिर उस स्त्री की गोद में रखा गया। उस घास और चिता को आग लगा दी गई। धुएं और आग की लपटों से उस स्त्री का दम घुट गया होगा। विजने का कहना है कि ऐसी स्थिति में उस निःसहाय स्त्री की वेदना क्षणिक रही होगी।

मूर क्रॉफ्ट और फ्रेज़र का साक्ष्य

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक अधिकारी और हिमालय क्षेत्र का प्रसिद्ध पर्यटक विलियम मूर क्रॉफ्ट सन् 1820 में सुजानपुर टीरा में राजा संसारचन्द का सम्मानित अतिथि रहा। वह रोहटांग और बारालाचा के मार्ग से लद्दाख जा रहा था, वर्षा काल के तीन महीने तक वह सुजानपुर टीरा में रहा। उस अवधि में दो स्त्रियों के सती होने का उसने उल्लेख किया है जिनमें से बड़ी की आयु केवल चौदह वर्ष की थी। उन्हीं दिनों कुल्लु की रानी की भी मृत्यु हुई थी। वह कदाचित राजा विक्रमसिंह की विधवा थी। मूर क्राफ्ट के अनुसार उसका दाह संस्कार कुल्लु की सीमा के पास बजौरा में हुआ था और उसकी चिता पर रानी की ग्यारह परिचारिकाएं जलकर सती हुई थीं। उसी प्रकार जे०बी० फ्रेज़र ने रामपुर बुशहर में राजा उग्रसेन के मरने पर कई स्त्रियों और पुरुषों का राजा की चिता पर जलने का उल्लेख किया है। फ्रेजर गोरखा युद्ध के समय जून 1815 ई० में रामपुर और सराहन तक गया था। उसके अनुसार 1810 ई० में राजा उग्रसिंह के मरने पर 22 व्यक्ति 'सती' हुए थे जिनमें तीन रानियां, बारह अन्य स्त्रियां और शेष पुरुष थे। पुरुषों में राजा का प्रथम चोबदार और एक दो वजीर थे। फ्रेज़र के रामपुर पहुंचने के केवल पांच वर्ष पहले यह घटना हुई थी। अतः जिन तथ्यों का उसने उल्लेख किया है, वे विश्वसनीय प्रतीत होते हैं; उन पर सन्देह करने का कोई आधार नहीं।

गोरखा युद्ध के समय मृत गोरखा सरदार और सिपाहियों की पत्नियों के सती होने का उल्लेख उस युद्ध के अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रायः किया है। बिलासपुर में मलौन के किले के बाहर गोरखा कमाण्डर भक्ति थापा के युद्ध में मरने पर उसकी विधवा को चिता पर जलते हुए अंग्रेजों ने निकटस्थ स्थान तारागढ़ से देखा था। उसी प्रकार नाहन के सामने जैथक के किले के बाहर गोरखा मृत सेनाधिकारियों और सिपाहियों की पत्नियों का सती होने का उल्लेख मिलता है। अन्य खश सामन्तों की भान्ति गोरखाओं में भी यह प्रथा प्रचलित थी।

हिमालय क्षेत्र में प्रचलित सती प्रथा की विचित्र बात यह थी कि राजा की चिता पर न केवल रानियां और दासियां ही सती होती थीं, वरन् उच्च अधिकारी और अन्य पुरुष कर्मचारी भी आत्मदाह करते थे। कुल्लु की रानी की चिता पर दासियों का 'सती' होना और उग्रसेन के साथ पुरुष अधिकारियों का जलना प्रचलित एवं मान्य सती प्रथा से मेल नहीं खाता। अन्यत्र भी ऐसा होता होगा, इसकी खोज की आवश्यकता है पर इस विचित्र प्रथा को समझने के लिए हमें इसके मूल स्रोत तक जाने की आवश्यकता है।

सती प्रथा का मूल स्रोत

इतिहासकारों की यह आम धारणा है कि सती प्रथा मूलतः आर्य संस्कृति की देन नहीं है। यह प्रथा भारत में आने वाली उन जातियों की देन है जो सन् ई० से चार पांच सौ वर्ष पूर्व से तीन चार सौ वर्ष ई० सन् बाद तक शक, कुषाण, पह्लव, वैक्ट्रियन, हूण आदि नामों में इस देश में आईं और नीर क्षीर की भान्ति इस देश की संस्कृति में घुल मिल गईं। पर इन्होंने अपनी संस्कृति के कुछ रूप यहां के जीवन पर प्रतिरोपित किए। सती प्रथा इन रूप और तत्वों में से है। विभिन्न नामों की ये जातियां मूलतः एक ही वृक्ष की अलग-अलग शाखाएं थीं। महान शक जाति के ये कबीले कर्राकोरम और हिन्दुकुश के वार मध्य एशिया में विचरण करने वाले लोग थे। देश-काल से इनके अलग-अलग नाम पड़े। इन लोगों में सती की प्रथा प्रचलित थी। पति की कब्र में उसकी पत्नी के साथ दास दासियों को गाड़ने का रिवाज इनमें प्रचलित था। रूसी पुरातत्ववेताओं ने यूराल पर्वत-क्षेत्र में ऐसी कई कब्रों का पता लगाया है जिनमें शक सामन्तों के जीवन की सभी ऐश्वर्य सामग्री, स्त्रियां, दास दासियां, घोड़े, बहुमूल्य कालीन, अस्त्र शस्त्र आदि को इन शवों के साथ गाड़ा गया था। इस प्रथा के मूल में सामन्तवर्ग के प्रभुत्व की भावना निहित थी। ऐसी मृतक-क्रिया का विधान आम आदमियों के लिए नहीं था। सामन्त और शासनवर्ग ही इसका अधिकारी था। इस जीवन में तो इस वर्ग को सभी सुख-सुविधाओं का अपरिमित अधिकार था ही, मरणोपरान्त भी उनको इसकी आवश्यकता थी—ऐसा विश्वास इस वर्ग का था। अतः उस जीवन के लिए सुविधाओं का प्रावधान उनकी कब्रों में ऐश्वर्य सामग्री पत्नियां, दास-दासियां, भृत्य आदि को गाड़ कर किया जाता था। मिश्र और रोमसागर की संस्कृतियों में भी यह सामन्ती रूप विद्यमान था।

राहुल सांकृत्यायन ने अपने मध्य एशिया के इतिहास में इस बात का संकेत दिया है कि रूसी लोगों में, जो इन्हीं मध्य एशियां की घुमन्तू जातियों के वंशज थे, ईसाई धर्म में दीक्षित होने से पहले नवीं सदी तक सती प्रथा प्रचलित थी। शकों की भांति मंगोलों में भी सामन्ती वर्ग के लिए ऐसी मृतक-क्रिया का विधान था। तृतीय दलाई लामा, सोनम ग्यात्सो ने सन् 1778 में मंगोल शासक अलताई खान को अन्य मंगोल सरदारों सहित बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इस अवसर पर सोनम ग्यात्सो ने इस प्रथा के लिए मंगोलों की भर्त्सना की थी। भारी सभा में अभिशाप रूप में उसने कहा, "अतीत में मंगोल सामन्तों के मरने पर उनकी पत्नी, नौकर, घोड़े और पशु उनकी चिता पर जला दिये जाते थे। अब आगे से तुम किसी के प्राण नहीं लोगे। यदि ऐसा किया तो तुम्हारा शरीर निष्प्राण हो जावेगा। यदि पशु हत्या करोगे तो भौतिक सम्पत्ति से वंचित हो

जाओगे। अब तक तुमने अपने पितर देवता "अगकू" के नाम पर प्रति मास कई पशुओं की हत्या की है। अब इस देवता को जला दो और इसके स्थान पर षट्भुज भगवान बुद्ध को दूध, दही मक्खन, फल आदि अर्पित कर पूजा करो।" इस उपदेश के फल स्वरूप कई मंगोल कबीलों में इस नृशंस प्रथा का अन्त हुआ।

हिमालय क्षेत्र की विशेषता

हिमालय क्षेत्र के मूल निवासियों के सम्बन्ध में अभी तक कोई एक सर्वसम्मत धारणा नहीं है; परन्तु अधिकांश इतिहासकारों की यह धारणा है कि सदियों पहले शक और उनसे सम्बद्ध मध्य एशिया के घूमन्तू कबीले काश्मीर से नैपाल तक फैले और अधिकांश जनसंख्या उन्हीं के वंशजों की है, देश-काल के अन्तर से इनके कई नाम, जातियां और वर्ग हुए। खश या खश्या कुलिन्द या कनैत, मावी या मवाना, मौन या मौनपा एक ही जाति के नाम-रूपान्तर हैं। सदियों पुराने इतिहास के उलट-फेर, अनेक जातियों के रक्त-मिश्रण, सांस्कृतिक सम्पर्क और निरन्तर जीवन-संघर्ष से इनका स्वरूप इतना बदल गया कि पुरातन एक-रूपता या समानता पहचानना कठिन है। लद्दाख से कमाऊं तक की कब्रों की खुदाई में एक ही कब्र में कई पुरुषों और स्त्रियों के अस्थि अवशेष मिलने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सदियों पहले यहाँ भी उक्त प्रकार की शव-क्रिया ये लोग करते थे। अत: कोई आश्चर्य नहीं कि हिमालय के कुछ क्षेत्रों में अपने पुरातन पूर्वजों की प्रथा के अनुरूप कुछ समय पहले तक शासक स्वामी या सामन्त की चिता पर स्त्रियों के साथ पुरुष भी 'सती' होते थे या सामन्त की पत्नी के साथ उसकी परिचारिकाएं भी चिता पर जल मरती थीं। पर इसके मूल में सामन्तवर्ग का स्वार्थ और अति आकांक्षा निहित थी—मरणोपरान्त जीवन में भी उनकी सत्ता और ऐश्वर्य-भोग अक्षुण्ण और अपरिमित रहे।

सती प्रथा का भारतीय रूप

भारतीय आचार्यों, मनीषियों और स्मृति-कारों ने इस प्रथा को एक उद्दात्त रूप प्रदान किया। पुनर्जन्म की पृष्ठभूमि पर इस प्रथा को उन्होंने प्रतिस्थापित किया; पति-पत्नी का जन्म जन्मान्तर का अटूट सम्बन्ध मानकर सती प्रथा को एक सम्मानित स्थान देने का प्रयत्न किया। महासतियों की संकल्पना करके इस सम्बन्ध को अत्यन्त पुनीत और सम्वेदनशील बनाया। "पति सतीनाम् हि परम् दैवतम्" की उन्नत भावना से जन्म-जन्मान्तर के अटूट सम्बन्ध को ऊंची प्रतिष्ठा मिली। इसके विपरीत यदि विधवा कुलटा और कलंकिनी हो गई तो जनमानस में यह भावना दृढ़ विश्वास के रूप में थी कि ऐसी कलंकिनी न केवल अपने आपको, वरन् अपने दिवंगत पति और उसके परिवार को नरकगामी बनाती है। तुलसीदास ने भी नरक जाने की धमकी दी थी—"वृद्ध रोग -बस धन हीना, अन्ध वधिर क्रोधी दीना। ऐसे पति कर किये अपमाना, नारि पाव जमपुर दु:ख नाना।" सारे परिवार के नरकगामी होने से तो अच्छा यही था कि वह चिता में अपने पति की सहगामिनी बने। सती, साध्वी और पतिपरायणा स्त्री की पावन कल्पना से जहां दाम्पत्य जीवन की पवित्रता बढ़ी जो भारतीय संस्कृति की विशिष्ट देन है, वहां सती की कुत्सित प्रथा के प्रति समाज और स्मृतिकारों का दृष्टिकोण अधिक सहिष्णु और उदार होता गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं सदी से यह प्रथा उत्तरोत्तर भारत में फैलने लगी । इतिहास में हर्षवर्धन की माता अंशुमति का प्रभाकरवर्धन के निधन पर सरस्वती के तट पर सती होने का उल्लेख आता है । उसी प्रकार उसकी बहिन राज्यश्री का विन्ध्याचल क्षेत्र में सती होने की तैयारी का प्रसंग आता है; परन्तु हर्षवर्धन यथासमय उसको बचा लेता है । राजवंश में सती प्रथा के प्रचलन का कदाचित यह पहला प्रमुख प्रसंग है । सम्भवतः इसका प्रचलन पहले से हो । ग्यारहवीं सदी के प्रथम चरण में अलबरूनी भारत में आया । उसने सती की प्रथा की व्यापकता का उल्लेख किया । मार्कोपोलो तेरहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में दो बार धुर दक्षिण में पाण्ड्या राज्य में आया । उसने वहां इस प्रथा के व्यापक रूप से प्रचलन के बारे में लिखा । मध्यकालीन भारत से यह प्रथा व्यापक रूप से सारे भारत में फैली । विशेषरूप से शास्त्र और स्मृति धर्म पोषक कर्मकाण्डी समाज में मुगल सत्ता के चरमोत्कर्ष काल (अकबर से औरंगजेब के शासनकाल तक) इस प्रथा पर कुछ नियन्त्रण रहा, परन्तु तत्पश्चात सती होना एक प्रतिष्ठा का विषय बन गया । सिख सम्प्रदाय में सती जैसी अन्ध विश्वासी प्रथा को कोई स्थान नहीं है; परन्तु तब भी सन् 1839 में रणजीतसिंह की चिता पर 26 स्त्रियां सती हुई बताई जाती हैं । वास्तव में सामन्त और समाज के सम्भ्रान्तवर्ग में चिता पर सती होना प्रतिष्ठा का प्रतीक हो गया था । इसका सबसे अधिक उग्र रूप अठाहरवीं सदी में देखने को मिलता है । यह समय मुगल साम्राज्य के ह्रास और अंग्रेजों सत्ता के उदय का सन्धिकाल था । पर हिमालय क्षेत्र में यह प्रथा सामन्तवर्ग और कुलीन ब्राह्मणों तक ही सीमित रही । उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में दलित स्त्री-समाज के उद्धार के लिए राजा राममोहनराय का मसीहा के रूप में उदय हुआ जिनकी प्रेरणा और प्रयास से सन 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक ने प्रथा को कानून-विरुद्ध घोषित किया । पर तब भी देशी राज्यों में यह प्रथा चलती रही । चम्बा राज्य में अन्तिम सती राजा चतरसिंह के मरने पर सन् 1844 में हुई थी । इसमें दो रानियां और छः बान्दियां राजा की चिता पर जलीं थीं । मण्डी में 1839 में राजा जालमसेन के मरने पर अन्तिम सती हुई थी । तब ये राज्य महाराजा रणजीतसिंह के शासन के अधीन थे । भारत में अन्तिम ज्ञात सती सन् 1861 में उदयपुर मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा के निधन पर हुई बताई जाती है ।

सेमवाल सदन, इंजन घर
संजोली, शिमला–6

स्रोत ग्रन्थ :

राहुल सांकृत्यायन : **मध्य एशिया का इतिहास भाग 1**
W. Moorcraft & Trebeck : *Journal of Travels*
Edward T. Atkinson : *Gazetteer of North-Western Districts*
Gazetteer of Simla Hill-States
V.A. Smith : *Oxford History of India*
Cunningham : *Archaeological Suvey of India 1978-79 Vol. XIV*
Chamba District Gazetteer
District Gazetteer of Tihri-Garhwal
M.S. Randhawa : *Travels in Western Himalayas*
Sir Charles Bell : *Tibet-Past & Present*
J.B. Fraser : *Himala Mountain*
John Pemble : *John Company At War*

हिमाचली लोक साहित्य में 'राम'

—डा० कांशीराम आत्रेय

शिष्ट साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त लोक मानस की राम तथा रामायण सम्बन्धी अनेक धारणायें आञ्चलिकता के भाव-धरातल पर भी प्रचलित हैं। उन लोक वार्ताओं में मुनिमानस सी उहात्मकता, अलौकिकता के साथ जन मानस के तथ्यानुभूत अंश भी विद्यमान रहते हैं। लोक-साहित्य में लोक-वार्ता का रुचिपूर्ण पक्ष ही उसमें साधारणीकरण द्वारा भाव तादात्म्य-क्षमता प्रदान कर समष्टि-भाव-प्रेषणीयता की कल्पना, भाव तथा बुद्धि के धरातल की समता का समर्थ वाहक होता है। लोक-वार्ता के कथांश, कथानक, लोकोक्तियां एवं धार्मिकानुष्ठान, संस्कृति, लोकाचार, लोकपरिपाटियां, मान्यताएं, धारणाएं तथा विधि-निषेध (टैबूज़), लोक गीत, लोक कथाएं और लोकगाथाएं इस लोक-मानस के रूढ़ांशों का स्मरण युग युगान्तर तक संजोए रखते हैं।

रामायण अपने मूल रूप की कथा में क्या था क्या नहीं था, इस पर रामायण, रामचरित मानस, उत्तर रामचरित, आध्यात्म-रामायण, आर्य संगीत रामायण तथा अन्य भाषाओं के रामायण ग्रन्थों में विषमता तथा मत सम्पादन में व्यष्टि परक कल्पना-लेखक का कृतित्व अथवा व्यक्तित्व स्पष्टतया पृथक दीख पड़ता है। जहां बाल्मीकि के राम अयोध्या के राजा राम हैं, तुलसीदास जी के राम **'सिया राम मय सब जग जानि, करहू प्रणाम जोरि जुग पानि'** की भावना में विश्व में व्याप्त सर्व व्यापी हैं। केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में उनके शृंगारिक व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है। वाल्मीकि, तुलसीदास तथा केशवदास तीनों के व्यक्तित्व की अपनी-२ कृतियों पर निजीपन की छाप है। यह शिष्ट साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। रचना रचयिता के मन्तव्याधीन गन्तव्य की ओर निर्दिष्ट रहती है।

इससे सर्वथा भिन्न लोक वार्ता रचयिता के मन्तव्य से नहीं किन्तु क्षेत्र-विशेष की मान्यता तथा समाज विशेष की सामूहिक प्रवृत्ति के अनुसार प्रचलित रहती है। इस चर्चा में एक बात स्पष्ट हो जाती है कि रचयिता लोकवार्ता को निजीपन के कारण शिष्ट मानस के पठन एवं मनन की वस्तु बनाकर उसके आकार को कृत्रिम तथा अविकसित बना देता है। इसके विपरीत लोकवार्ता की विभिन्न विधाओं, यथा लोक साहित्य, लोक गीत, लोक कलाओं, लोकोक्तियों में कबीर के कथनानुसार उसका स्वरूप स्वच्छ तथा बहते नीर के समान ही अकृत्रिम रहता है। उसका प्रयोग सर्व साधारण पुरुष, स्त्री, बाल-वृद्ध यथेष्ठ रूप में कर पाते हैं। उनकी भाषा सम्बन्धी 'बहते नीर' की बात लोक-वार्ता तथा लोक साहित्य पर भी उतनी ही सही उतरती है। जब तक लोकवार्ता के तथा लोक साहित्य के उस अंश को स्वत: समाज में वह स्वरूप न मिला तब तक उसका अस्तित्व उसी रूप में विद्यमान रहता है। इस परिक्षेत्र की लोक वार्ता की विभिन्न विधाओं में रामायण-परक सन्दर्भों का क्रमश: अध्ययन निम्नवत् प्रस्तुत करने पर रामायण, राम तथा रामायण सम्बन्धी मान्यताओं का

अन्य अंचलों के अध्ययन के साथ लोकमानस, समाज, संस्कृति, कल्पना सम्बन्धी उदात्त तत्व ग्रहण किये जा सकते हैं। इसके साथ संस्कृति, देवता, पौराणिकता, इतिहास की ओर भी दृष्टिपात किया जा सकता है। किसी खण्ड या समाज की उसके आदि-ग्रन्थों के प्रति धारणा तथा नायकों की लोक प्रियता उस जाति, समाज तथा क्षेत्र के संगठन और विकास का इतिहास ज्ञात करने की सूझ उत्पन्न करता है। सर्व साधारण, वृद्ध, स्त्री-पुरुषों में यह वार्ता प्रचलित है कि हनुमान रामचन्द्र जी के मामा थे। बन्दरों को आज भी मारना पाप समझा जाता है। उनको अपनी भाषा में रामचन्द्र का सहायक समझते हैं। हनुमान या वानर जाति थी अथवा जानवर बन्दर थे यह स्वतन्त्र शोध का विषय है परन्तु हम आज भी वानर हनुमान को ही मान्यता देते हुए हनुमान की पूजा करते हैं।

इस क्षेत्र के कई स्थानों नागचला, मण्डी शहर अन्य मन्दिरों की मूर्तियों पर हनुमान के लोककलापूर्ण चित्र बने हुए हैं। वास्तव में उनकी आकृति बन्दर की ही है। यहां के समाज में वानर की पूजा व मान्यता का सम्पर्क तथा सम्बन्ध राम व रामायण काल से ही है।

इसी क्षेत्र में लोक कथन प्रचलित है कि एक बार वन में राम तथा हनुमान जी भोजन कर रहे थे। कहते हैं, रामचन्द्र जी के हनुमान अतीव शुभेच्छु थे। एक दिन वे एक ही पात्र से भोजन ग्रहण कर रहे थे। एक ग्रास डालने के बाद हनुमान जी हाथ साफ कर लिया करते थे। रामचन्द्र जी ने कारण पूछा। हनुमान जी तुरन्त बोले कि मामा को अपने भानजे को जूठन नहीं खिलानी चाहिए। आज भी इस प्रकार की कड़ी मान्यता तथा धारणा इस क्षेत्र में व्यावहारिक रूप में अधिकांश में प्रचलित है। भानजे को पूज्य तथा बन्द्य समझकर उसका जूठन खाना तथा चरण-स्पर्श करना तथा पूजन श्रेष्ठानुष्ठानों में गिना जाता है।

एक अन्य वार्ता में, कहते हैं कि लंका-दहन के समय हनुमान ने रुई, तेल, आग आदि सब कुछ उछालकर पकड़ना तथा जलाना चाहा किन्तु सब शस्त्रास्त्र निहत्थे और निष्काम सिद्ध हुए। अन्त में बांस के बर्तन बनाने वाले मंझाड़ा (बुणजादा)[1] के द्रान्त से प्रहार करने पर उसके अढ़ाई बाल कटे। उस समय में क्या-२ शस्त्र-अस्त्र थे कैसे और क्यों निहत्थे रह गये यह वैज्ञानिकों के सिर-दर्द तथा झुंझलाहट का विषय तो है किन्तु लोकमानस की पैनी दृष्टि में उस द्रान्त की उपयोगिता की ओर ध्यानाकर्षण तथा उसके विषय में यह कथन और वार्ता एक सुरुचिपूर्ण पैर है। आज भी इस शस्त्र को नाकारा कहते हैं। वास्तव में इससे आज भी बांस के काटने के सिवा अन्य कुछ कार्य नहीं लेते हैं और कहते हैं कि उसी समय का नाकारा (अन्य किसी कार्य में न आने वाला) होने का शाप रामचन्द्र की ओर से मिल गया था। आज भी इसको नाकारा शस्त्र के रूप में इस अंचल में मान्यता प्रचलित है। शिष्ट मानस को यह बात साहित्यिक धरातल से विषम प्रतीत हो किन्तु रामप्रिय हनुमान जी जो उनकी छाती में छिपे पाए कहे गए हैं—उनके अढ़ाई बाल काटने वाले इस पैने शस्त्र को लोक-मानस ने घृणास्पद माना है। इसको मान महत्ता क्यों मिले जो राम-प्रिय हनुमान का घातक और संहारक हो। इस कथन के आलोक में लोक मानस की राम-प्रियता के विषय में ज्ञात होता है। लोक-मानस की राम-प्रियता की उक्ति तुलसी के भाव के समान ही प्रचलित प्रतीत होती है—

'जाके प्रिय न राम बैदेही, सो नर तजिये कोटि बैरी सम जदपि परम स्नेही।'

अर्थ :- 1. बांस के बर्तन बनाने वाला।

अतएव श्री राम के सहायक हनुमान का अवहित करने वाले इस शस्त्र को भी केवल यहां के व्यवसायिक लोग ही प्रयोग करते हैं। भले ही यह कितना तीव्र, पैना और उपयोगी शस्त्र क्यों न हो। तीव्र और पैना तो था ही जो आग या गोला, तीर, बन्दूक को भी मात कर गया हो। लोक-मानस ने यह भी उपयोगिता सिद्ध कर दी है किन्तु साहित्यिक न्याय में इसकी अवमानना राम द्वारा अभिशप्त होने पर प्रतिष्ठित कर दी है। उपयोगी तो है पर अपने अनुचित्य के कारण महत्ता घटा दी है। लोक मानस के औचित्य तथा न्याय में लोकोपकारी के घातकों की अवमानना ही उचित दण्ड है। तुलसीदास जैसे शिष्ट मानस ने भी समन्याय की सुन्दर अभिव्यक्ति निम्नवत की है। यथा :—

होई है सोई जो राम रचि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा॥

फिर लोक मानस का सम-न्याय भी तुलसीदास जी से कहां पीछे रह गया है। लोक वार्ता में यहां प्रचलित है कि सीता को रावण हरण के समय रोतो-विलपती देख दूर्वा घास ने उसे रोकने की पूर्ण चेष्टा की किन्तु उसको मूलोच्छेदन ही हो गया। राम के पूछने पर पूर्ण समाचार कह सुनाया। रामचन्द्र गद-गद हो दूर्वा को वरदान वचन देकर कह गए कि दूर्वा घास गर्मी सर्दी में सदैव हरी रहेगी। आज भी दूर्वा को उखाड़ते समय इस आंचल की मान्यता है कि रामचन्द्र को सीता की सहायक दूर्वा को राम द्वार चिर अमर रहने का वरदान प्राप्त हो चुका है। यह बात बाल-वृद्ध नारी-पुरुषों में प्रचलित है। यह तो लोकोपकार का फल है जो लोक-न्याय में मेहन्दी सदृश लोकोपकारी को संगत द्वारा सहज प्राप्य है।

एक अन्य लोकोक्ति जो यहां के समाज में प्रचलित है वह रामायण का कथा बिन्दु है। लोकोक्ति का स्वरूप निम्नवत पठनीय है :—

एक था राम, एक रौबड़ा।
तेसरी चोरी सीता,
तेसा पीछे फूकी रखेश्रा गौड़ा।

राम सीता तथा रावण और लंका दहन की सरल वार्ता में लोक मानस की मूल सूझ में स्त्री कलह का कारण, तथा अनुशासन हीनता विनाश का कारण कहा है। बात कितनी स्पष्ट तथा सारगर्भित है। कई रचयिताओं के कथन को एक ही सिद्धान्त वाक्य में लोक-मानस गागर में सागर भर कह जाए और उस पर मर्मालु एवं सुधि साहित्यकार विस्मय विभोर न हों यह कैसे? इस विवेचन में लोक कला में हनुमान चित्र, लोकोक्ति में रामायण का कथा बिन्दु, लोक वार्ता में लोक-मानस का राम-हनुमान प्रेम, राम सीता की आपत्ति, उस समय हनुमान दूर्वा द्वारा राम का सहायक होना, लोक-मानस के द्वारा इस सिद्धान्त की स्थापना करता है कि प्रत्येक वस्तु समय पड़े किसी के भी उपयोग की हो सकती है। शिष्ट मानस में निम्न विचार प्रसुप्त रूप में भी उद्दीप्त हो स्मरण हो आता है :—

देखि बड़न को लघु न दीजिये डारी।
जहां काम आवे सुई कहा करे तलवारी॥

फिर इस लोक मानस में प्रत्येक स्मरण भजन गायन कथा झेड़ा, या विवाह गीत में रामायण का भरपूर स्मरण कथन बार-बार आता है। लोक-गीतों में रामायण तथा राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ,

कौशल्या हनुमानादि का क्या स्वरुप वर्णित है इसके लिए प्रचलित गीतों के कलेवर में निहिताभिप्रायों को पाठक स्वयं परख पायेंगे। गीत क्रमशः इस प्रकार आरम्भ होते हैं।

इस क्षेत्र के बधावे (बधाई) शुभारम्भ, विवाह मंगल यज्ञ अथवा समिधां या बड़ियां डालते समय राम स्मरण के गीत निम्नवत अवलोकनीय हैं :—

किसदे हुन्दे बाग बगीचे,
किसदे हुन्दे रंगले महल।
पुरुषां दे हुन्दे बाग बगीचे, नारियां दे हुन्दे रंगले महल—
केत्थी तो बसे मेरे तुलसी,
केत्थी बसे मेरे राम।
रीढुयें बसे मेरे तुलसी,
मुख विच विच बसदे मेरे राम।
जपिये तपिये ता जपिया राम।

इसमें राम तुलसी स्मरण किया गया है। शुभ कार्य के प्रारम्भ में राम चिन्तन यहां की लोक परिपाटी है। गिनती करते समय पहले राम जी का उच्चारण करते हैं। अन्न भरते समय एक पात्था (अन्न का नाप) भरते 'वरकत राम जी' दो राम जी करके गिनती करते हैं। यहां लोक-मानस में अत्यन्त प्रिय प्रचलन हैं। तुलसी का नाम भी तुलसी युग के राम में व्याप्त है। परन्तु रामायण परक गीतों की लोक प्रियता का इतिहास अत्यन्त प्राचीनता की कड़ियों और लड़ियों को लिये हुए है। गीत के उद्धृत कलेवर से इसका स्पष्ट भान हो पायेगा।

राम भी आये वीर लछमण आये,
उठ भाई गले मिलो लै—
उठ भ्रात गले मिलो लै—
जौ भी पाके गेहूं गदराये
चन्ने भ्रां पई गई बांची
गले मिलो लै, उठ भ्रात गले मिलो लै।

राम लछमन आगमन पर उनसे मिलनातुरता के क्षणों का हृदय स्पर्शी वर्णन लोक-काव्य, फोक-पोयट्री (*Folk Poetry*) का अतीव रसार्द्र रूप है। इसमें भ्रातृ प्रेम की सरिता उमड़ती हृदय में न समाकर बाहर फूट पड़ने को ठाठें मार रही सी प्रतीत होती है। लोक-मानस का समष्टिगत कवि भ्रातृ-प्रेम को भली प्रकार समझता है। जो बात लोक की कसौटी पर कस कर राम-चरित मानस के रचयिता ने भी लोक भावना में भाव मिला कर कही है कि जगत में सुत बित, परिवार नाता प्राप्त होते हैं किन्तु सहोदर भ्रातः नहीं मिलते। लोक-मानस की भ्रातृ प्रेम की आकुलता का स्परूप ही लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर राम के द्वारा बिलाप तथा रोदन में परिलक्षित होता है।

हमारे लोक तथा समाज में ज्येष्ठ भ्राता को अपने अनुजों को उचित शिक्षा देने का भी कार्य करना पड़ता है। लोक की यही भावना इस लोक गीत में व्यक्त हुई है।

मेरेया वीरा लछमणा तू कां बणेश्रा नगुरा।
मेरेश्रा वीरा रामा कां नगुरा बणेश्रा मैं।

बिना गुरुये ज्ञान भी नी हुन्दा मेरेश्रा लछमणा वीरा
गुरु धारण करीं कोई जरूर।
मेरेश्रा वीरा तूहले भ्रग्गे मैं कौण गुरु धारूं।
कौण मैं गुरु धारूं, दसी वेणा नौं भ्रौं।
जयो गुरु गोरख नाथ जिसनो गुरु ध्याश्रो जी।
नौ लख चेला जिस गुर दा, मैं किहाँ पछैंणू?
चेलेश्रां बीश्रा धुणिया लकड़ी जलदी,
गुर दिश्रा धुणिया लौंग जलदे।
केसां ते दूधा जेही बूदां पौन्दी,
तेसजो गुरु पछैंणेश्रां जी,
तेसजो गुरू धारी श्रायां जी।

मंजले ता मंजले जान्दा जी,
जाई डेरेश्रां पूजी जान्दा,
चार चफेरी लैन्दा वो लछमण,
चरणा पर सिर झुकान्दा,
क्या तिजो दुख श्राया मेरेश्रा वीरा,
किस कारण डेरे श्राया जी।

वीरणे मेरे नगुरा जे बोल्या,
गुरु गोरख बताया जी।

कइयां दी गुदरी बारा बरसां,
कइयां दी होई उमर सारी,
नौ लख चेला बगैर मुण्डेश्रा, तू ऐसजो मुण्डणे तैयार होएश्राजी।
हाथा लैन्दा चिमटा कान्धा पान्दा झोली—

एक डिब्बी वे मेरी माता राम तेरी पूरी पांधा।
एक डिब्बी न दिसी माता मेरी,
तेरे बालका श्रो सुवाये मेरा राम।
जिस नो राम सुवाया, कोई नी जगान्दा जी।

इस गीत में राम द्वारा लक्षमण को गुरु धारण की शिक्षा लोक गीत में लोक परिपाटी की भान्ति औपचारिकता का वहन करती है। इसमें बड़ों का छोटों के प्रति पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वाह सौम्य एवं सुन्दर बन पड़ा है। राम के नाम की दुहाई रामावतार धारणा तथा उनके ईश्वरीय रूप की कल्पना लोक में भी परिव्याप्त है। इसका लोक प्रचलित लोक-काव्य में ये रूप भी अवलोकनीय है यथा :—

राम बधावे सो बधे,
बल कर बधे न कोए।
बल कर बधे थे रावण, जिन्हें पल में लंका खोई।

राम जिसे मारे उसको कौन बचायेगा। राम ही सब के काज संवारता है। यह उनके ईश्वरीय रूप का भाव है, जो समाज में प्रचलित है। जिसके पुष्ट प्रमाणार्थ उपरोक्त लोक गीत तथा लोक-काव्य का अंश पर्याप्त होगा। इस आंचल में राम नाम की महिमा का प्राधान्य अन्य रूप में भी व्याप्त है। जन्म से मरण तक राम नाम की महिमा का जाप किया जाता है। किसी गाथा, कथा अथवा मंगलाचरण में भी रामा रामा जीए अथवा गाथाओं के गायन के साथ मेरा राम जाणे, आदि टेकों का अत्यधिक प्रचलन है। इससे भी रामायण परक महत्ता की छाप इस भूखण्ड के लोक साहित्य में पाई जाती है। मृत्यु के समय यह प्रचलन 'राम नाम सत है।' भी राम विषय प्रमुख धारणा का द्योतक है। यहां के लोक मानस में शिष्ट मानस से भी अधिक यह धारणा समाई है कि राम ही पालक तथा संहारक हैं। राम सीता हनुमान आदि नामों की आवृति सम्पृक्त गीतों के द्वारा भी यहां के समाज में राम-काव्य (रामायण) सम्बन्धी धारणाओं का विस्तृत तथा गहन प्रभाव ज्ञात होता है :—

केस रगें रुपे मोहि सीता हां हो,
राम रगें रुपे मोई सीता हां।

सीता को राम रूप में प्राप्त किया। सीता स्वयंवर राम के ही योग्य थीं, लोक भावना इस बात की घोषणा गीत की उपरोक्त कड़ी में करती है। एक अन्य गीत लड़ी में भी राम की चर्चा यहां की उदात्त भावना राम के मर्यादा पुरुषोत्तम होने के विषय में सबल पुष्टि कारक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं यथा :—

काहे रा बीया रामा, काहे री बाती,
सरसों रा तेल रामा, नर्मे री बाती,
बले मन्दिरां बिनां राती।

मेरे राम रघुवीर इस दुनियां में अपणा कोई नहीं
ये काया जीवन कागद की पुड़िया,
राम मेरे अपना कोई नहीं।

कीत्थी ता रहग्वे म्हारे रघुराई बे—चिट्ठी राम वाली आज भी न आई बे ।
घरा भी ता रोन्दी कौशल्या माई बे,
चिट्ठि राम वाली आज भी नी आई बे,
अन्दरा ता रोन्दी हर वी माई बे,
चिट्ठी राम वाली आज भी नी आई बे ।
घर ता रोंदी समित्रां माई बे, चिट्ठी राम वाली आज भी नी आई बे ।
बुरी कीती पापीया रावणा, तें मेरे राम लछमण दी कीती तवाही बे ।

मातृ-वात्सल्य की भावना का सच्चा स्वरूप लोक के हृदय की सुन्दर तथा मार्मिक झलक प्रस्तुत करता है । इसमें वास्तविक मातृ-प्रेम उमड़ता दर्शाई देता है । वनवासी आत्मज की स्मृति माता के हृदय को किस प्रकार दहला देती है । यही बात गीत के सरल बोलों में पत्र प्रतीक्षा तथा राम रावण युद्ध की चर्चा में प्रेम में आशंका के रूप को स्पष्ट करते हैं । माता पुत्र वियोग में पत्र की प्रतीक्षा तो करती ही है । लोक हृदय में पत्र-प्रतीक्षा की आतुरता तथा युद्धों की विभिषिका का चित्र लोक गीतों के बोलों में सुन्दरता: पूर्ण वर्णित हुआ है ।

यहां के एक लोक भजन में राम लक्ष्मण हनुमान सीता के नामों का इस प्रकार वर्णन है :—

बस, जाइयो मेरे मना वसे जाइयो जैसे प्रभु बसे सीता के मन में ।

जैसे सीता, लक्ष्मण, हनुमान के मन में बसे थे उसी प्रकार की श्रेष्ठता प्राप्ति की अभ्यर्थना लोक-कीर्तन में की गई है ।

यहां के अन्य लोक गीत (भ्यागड़ा) राग बिहागरी प्रात: कालीन भजन में राम महिमा अपने सामाजिक धन्धों के साथ इस प्रकार गाई है :—

सवेरे दे तड़के दूधा दूणा चलियां रामा,
वो बालका दूधा रेआ प्यासेआ,
गौउएं बाही लाता री, बेसर, चूड़ी तोड़ी हाथा री
बालका दूधा रेआ प्यासेआ ।

राम का रूप 'बाल कृष्ण' सा वर्णित करके एक साधारण कृषिक समाज के दैनिक जीवन की गौ दोहनादि क्रियाओं का समावेश करके राम राजा के पुत्र होते हुए यहां के कृषि समाज की सहस्रों कौशल्याओं के आत्मजों के समान सरल भोले भाले शिशु हैं । उन्हें वे कौशल्यायें स्वयं ही दुध पिलायेंगी न कि दासियां अथवा गोलियां । इस प्रकार लोक गायकों के रामायण का एक अन्य अध्याय चरकटी (बाण्ठड़ा) के रात्रि गीत में निम्न भावों का प्रकाशन करता है :—

राम लछमण दोनों जे भाई,
दशरथ दे दो बेटे ये हां,
धनुख उठाया जिने लछमण जतिये,
ताहें सीता जे व्याही ओ हां,

सीता ब्याही तिने राम चन्द्रं, होई रहे श्रा घर बारी एश्रो हां,
सीता नी सतवन्तिये नारे, तूहें लिश्रायें श्रां जल पाणी एहां,
मटिया रा घड़ोलू मैं कवी भी ना नीवां,
लोक बोल कुम्हारी ये हां,
श्रो पीतली री झारण लिश्रायां, मेरे रामा ताहें लिश्राश्रां जल पाणी,
श्रो पीतली री झारन मैं कवी भी नी लिश्रावां,
लोक बोले ठठयारी ये हां,
श्रो शीशा घड़ोलू, रुपे दा बिन्नुश्रा लोक बोलें सिया राणी एहां ।

अब सीता को लोक गायकों की सहज कल्पनानुसार बनवासी अवस्था में पानी भरना पड़ता है । सीता राणी है । क्या साधारण ग्राम्या नारी की भान्ति ही पानी भरने चली जावे । इस मर्यादा का लोक कवि को पूर्ण ध्यान रहता है । सीता के जल भरने के लिए भी वह शीशा घड़ा तथा रूप (चांदी) का बिन्नुआ बतलाकर मानवती सीता को पानी भरने की व्यवस्था करता है। इस प्रकार के अन्य गानों में भी 'राम जी' शब्द की बार-बार पुनरावृति के हेतु टेक ली जाती है यथा :—

श्रोखला खटुकला, सात सुहागणी श्राई तेरीश्रा सेवा राम जी ।

चरकटी नहीं बोलणी महादेव की चेली,
पंच भीखमीश्रां पुण्या राम जी,
धन माई सलाखणी जिसे सात बेटे जाये,
पंज पटारिश्रा पाए दो गंगा नहाये राम जी ।

चरकटी नहीं बोलणी, चरकटी नरंगी डोर,
सोवणा है गोरिया बण बोले मोर राम जी ।

इस प्रकार लोक मानस में राम के प्रति श्रद्धा भाव की न्यूनता ही नहीं रहती । मानो रामायण पाठ के बिना ही राम चर्चा तथा राम सीता सम्बन्धी समादर भाव, दशरथ, कौशल्या, लछमण भाई की रघुराई के नामों से उनके स्मरण भजन बार-बार उच्चरित होते हैं । एक अन्य रूप में लोक-गायक इस प्रकार रामायण की लड़ियों को गाता है ।

१. सीता बण में खड़ी नंगी नारी मैं क्या करू राम ।
२. राधा बण में खड़ी नंगी नारी मैं क्या करू राम ।

बूटे लाई दित्ते बूटे नी लगवे मेरे राम—
श्रासां केहड़े पाप कमाये रामा—
बूटे लगी जान्दे फल नी लगदे श्रासे केहड़े पाप कमाये रामा ।
फल भी लगी जान्दे पर पकदे भी नी,
पाकी पर जान्दे पर खाणे वाले कोई भी नी, श्रासे केहड़े पाप कमाये राम ।

राम चर्चा की इस क्षेत्र के गीतों में भरमार है। एक अन्य चौके के दिन अथवा विवाहावसर, मुकलावा या अगौना के पानी भरने पर अन्य गीत के भाव ये हैं :—

सिया राणीये भरी लैणा पाणी ओ,
पीही लैण्या कूही लैणा, भरी लैणा पाणी,
हाउं हूंगा हाली ता तू हूंगी घरव्याणी।

शीशा घड़ोलणू ओ सिया पाणीए ओ डुलिओ,
शीशा घड़ोलणू सिया पाणिये ओ डुली ओ।

अन्य लोक गायक राम कचहरी में जाने की अलौकिकता के स्वरों में चेतावनी देता है।

कमलेआ माहणुआ जाग सवेरे सतसंगा जो जाणा हो,
होले-होले सब दिन बीते, राम नी चेत्ते आया हो।

मृत्यु की घण्टी सिर पर बजने को है तो भी विश्व में रमे रहने की समाई है। कितने दूर ठिकाने और अन्तिम विदा होगी, तनिक मात्र भान नहीं। अन्य लोक-गीतकार के स्वर जानकी को सम्बोन्धित करते हैं :—

सिरा दे सालुये पैंहनो मेरी जानकी ओढ़ो मेरी जानकी,
तें मेरा गोविन्द मोहेआ··· ··· ··· ··· ।

मानवती जानकी के रूप वर्णन की झलक इस गीत में व्यक्त हुई है। इन गीतों की साहित्यिकता, पौराणिकता, ऐतिहासिकता का मूल्यांकन तों सुधी साहित्यकारों के क्षेत्र की वस्तु हैं। इस नगण्य प्रयास में राम तथा रामायण की चर्चा का बहुपक्षीय दिग्दर्शन ही मन्तव्य था, जो लोक वार्ताओं तथा लोक गीतों के उद्धृतांशों में पाठकों को स्पष्ट हुआ हो तो उन्हें राम-काव्य सम्बन्धी इस क्षेत्र की प्रभविष्णुता का समुचित परिचय प्राप्त हो पाना स्वाभाविक है। राम चर्चा प्रत्येक आंचल की प्रिय चर्चा है तभी तो शिष्ट मानस भी यह कह उठे थे :—

राम से बड़ो है कौन, कौन मोसों छोटो,
राम सों खरो है कौन, कौन मोसों खोटो।

एवम्

राम तुम्हारी वृत स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

कांशीराम,
राजकीय उच्च पाठशाला
टिहरा, मण्डी

प्राचीन स्मारकों का रक्षण
हिमाचल प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में

–अमर नाथ खन्ना

भारत का पुरातत्व महान् रहा है। हमारे देश के प्राचीन स्मारक विविधता, विस्तार, सम्पूर्णता तथा रमणीयता में संसार में अपनी सानी नहीं रखते। इस संचयागत सांस्कृतिक धरोहर को परिरक्षित करना तथा उसे आने वाली पीढ़ियों के लिए यथासम्भव अखण्डित रूप में बचाए रखना वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण कार्य ही है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण इस कठिन कार्य को कल्पना तथा समर्पण के साथ करता रहा है। परन्तु यह प्रयास केवल राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों के लिए होता है इनकी गिनती सारे भारत में कुल मिला कर लगभग साढे तीन हजार है। प्रादेशिक महत्व के प्राचीन स्मारकों का रक्षण प्रदेश सरकारें ही करती हैं। हिमाचल प्रदेश में भी इस विषय का अधिनियम 1975 में पारित हुआ था। इस अधिनियम के उपनियम शीघ्र बनने चाहिएं। ताकि उपयुक्त स्मारकों को संरक्षण प्रदान किया जा सके और उनकी मरम्मत के लिए उचित पग उठाए जा सकें। वैसे 1978-79 में भाषा तथा संस्कृति विभाग ने विभिन्न जिलों के स्मारकों की मरम्मत के लिए लगभग एक लाख रुपये का अनुदान दिया था।

स्मारकों का क्षय :

काल और उपेक्षा के अतिरिक्त प्रकृति भी स्मारकों के क्षय में भागीदार होती है। वर्षा से जंगली पौधे और काई उत्पन्न होते हैं। समुद्रतटीय इलाकों में नमकीन समुद्री हवाएं सीधी स्मारकों से टकराती हैं। शुष्क स्थानों में रेतली हवाएं भवन-सम्बन्धी सामग्री को खुरचती है। जमीन का शोरा पत्थरों और ईंटों को क्षति पहुंचाता है। हिमपात से ऊंचाई पर स्थित स्मारकों पर बहुत कुप्रभाव पड़ता है। भूकम्पशील क्षेत्र के स्मारकों में बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं। इसी प्रकार अन्य कारणों से भी स्मारकों को क्षति पहुंचती है। इन सबके साथ मानव भी कला-विध्वंस का दोषी है। प्राचीन स्मारकों को नया रूप देना तथा चित्रों के निकट दीपकों और काफूर आदि का जलाना उन्हें क्षति पहुंचाना ही है।

समस्याएं :

भारत जैसे विस्तृत तथा विविधतापूर्ण भौगोलिक और भौतिक विशिष्टतायुक्त तथा विभिन्न जलवायु वाले देश में प्राचीन स्मारकों के रक्षण में बहुत सी समस्याएं पेश आती हैं। परिवेशी तत्वों के इलावा स्मारकों में प्रयोग में लाई गई भवन निर्माण सामग्री की विवधता ही परिरक्षण के स्वरूप का निर्णय करने में सहायता देती है।

श्री एम०एन० देशपांडे का कथन है :—"स्मारकों के उचित परिरक्षण का मार्ग केवल एक सिद्धांत के इर्द-गिर्द घूमता है और वह सिद्धान्त है स्मारक के व्यक्तित्व को ही पूरी तरह से समझना—उसके ऐतिहासिक, वास्तु-विद्या सम्बन्धी, परिवेशी तथा आकार सम्बन्धी, पहलुओं से । यह अवश्यमेव सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि स्मारक बिना अपने मूल स्वरूप को विकृत किए अथवा रूपान्तरित हुए ही परिरक्षित हो और उन्हें अपने आसपास के बातावरण के साथ कलात्मक ढंग से कायम रखा जाये ।"

भूल स्वरूप में कुछ बदलना या जोड़ना इतिहास को झुटलाना ही होगा । सर जान मार्शल कन्ज़र्वेशन मैनुअल (पृष्ठ ९-१०) में लिखते हैं :—"जब उनकी प्रामाणिकता समाप्त कर दी जाती है तो उनका ऐतिहासिक मूल्य नष्ट हो जाता है, तथा हमारा पहला कर्त्तव्य उन्हें नवीनता प्रदान करना नहीं प्रत्युत्त परिरक्षित करना है ।"

अप्रैल १९४६, से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने स्मारकों के रक्षण तथा परिरक्षण के लिए विशेषज्ञता संस्थापित की है । बामियान (अफगानिस्तान) में इसके द्वारा किया गया बौद्ध स्मारकों के रक्षण का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहारा गया है । बामियान में संसार की सबसे ऊंची बुद्ध की दो प्रतिभाएं हैं । जिनकी ऊंचाई क्रमशः ५५ मीटर तथा ३८ मीटर है । बुद्ध की बड़ी मूर्ति की ऊंचाई आजकल के हश मंजला भवन के बराबर है । घाटी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जहां तक नजर जाती है सैंकड़ों गुफाओं के मोहरे दिखाई देते हैं । इनमें से कुछ निर्माण कला, मूर्तिकला तथा भित्ति-चित्रों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । विदेशों में प्राचीन स्मारकों के रक्षण के लिए भी भारत वस्तु सामग्री के रूप में सहायता दे रहा है, उदाहरणार्थ इण्डोनेशिया में बोरोबुदुर तथा पाकिस्तान में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के लिए ।

राष्ट्रीय महत्व के सर्वोपरि महत्वपूर्ण स्मारकों में जिन की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया जा रहा है, ताजमहल. आगरा है जो मुगलों को वास्तुकला का चरमबिन्दु है तथा भारतीय इस्लामी वास्तुकला के विकास में "उत्क्रष्ट क्षण" है कुतुबमीनार, दिल्ली की नीवें सीमिंट पद्धति से (*Cementation*) सुदृढ़ की गई हैं ।

नागार्जुनकोंडा 'आन्ध्र प्रदेश' में स्मारकों को उठाकर अन्य स्थान पर पुनः स्थापन करने की तकनीक भारतीय पुरातत्वशास्त्रियों ने विकसित की थी । इसी तकनीक द्वारा ही मिश्र और सुडानी नुबिया में प्राचीन स्मारकों को आसवान हाई डैम में डूबने से बचाया गया था । नागार्जुन कोंडा में आदि पाषाण युग से लेकर ऐतिहासिक काल तक के अवशेष मिले हैं जो भारत के एकमात्र द्वीप-संग्राहालय में प्रदर्शित है । उपरोक्त तकनीक से ही आन्ध्र प्रदेश के पापनाशी समूह के २७ मन्दिर तथा संगमेश्वरम् मन्दिर, श्रीशैलम् पनबिजली परियोजना के सन् १९८० ई० में चालू होने से पहले पुनर्स्थापित किए जायेंगे । इस बार प्रत्येक पत्थर पर अंक लिखे जायेंगे और परिणाम यह होगा कि केवल स्थान को छोड़ कर बाकी मन्दिर ज्यों का त्यों पुनः स्थापित होंगे ।

विश्व प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर, किणार्क तथा अतिपावन जगन्नाथ मन्दिर, पुरी (उड़ीसा) की मुरम्मत तथा रासायनिक परिरक्षके के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने यूनेस्को के द्वारा विशेषज्ञों की सलाह मांगी है ताकि वह किए जा रहे कार्य को देखें और यदि आवश्यकता हो तो उसमें सुधार को इंकगत करें, यूनेस्को ने एक विशेषज्ञ इस कार्य के लिए उड़ीसा भेजना स्वीकार कर लिया है ।

द्वारकाधीश मन्दिर, द्वारका (गुजरात) का जीर्णोद्धार भारतीय प्ररातत्व सर्वेक्षण के इन्जीनियर श्री आर० विश्वनाथन करवा रहे हैं।

अजन्ता (महाराष्ट्र) की विश्व प्रसिद्ध गुफाएं संसार की सांस्कृतिक धरोहर हैं। इनके परिरक्षण के बारे में युनेस्को तथा अमेरिका के विशेषज्ञों से भी सलाह मशवरा किया गया था। यह प्रसन्नता की बात है कि विभिन्न चित्रों की रंगीन परत बिल्कुल अविकृत है तथा निकट भविष्य में ही यह भितिचित्र परिरक्षित हो जाएंगे।

लद्दाख क्षेत्र (जम्मू तथा काश्मीर प्रदेश) के १७००० फुट ऊंचाई पर स्थित विहार हिमपात से कुप्रभावित होते हैं। इन विहारों का रक्षण १९७८ में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने आरम्भ किया था तथा उनकी छतों को चूने से रक्षित (वाटर टाईटर) किया जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश के लाहौल और स्पिति जिले में ११,००० फुट की ऊंचाई पर स्थित ताबो के गाम्फा जिन के निर्माण का आरम्भ ११वीं शताब्दी में हुआ था हिमालय की अंजिला (अजन्ता) ही है। इनके उत्कृष्ट भितिचित्र अजन्ता परम्परा के हैं और १९७२ में इन्हें संरक्षण प्रदान किया गया।

हिमालय में स्थित ये गोम्फा वर्ष में छः मास हिमाच्छादित रहते हैं। जब वर्फ पिघलने लगती है तो पानी गोम्फाओं के अन्दर जाता है जिससे लकड़ी की छतों और भित्तिचित्रों को क्षति पहुंचती है। इन गोम्फाओं के रक्षण और परिरक्षण के लिए काम हो रहा है। चम्बा जिले के अद्वितीय छत्तराड़ी और भरमौर के लकड़ी मन्दिरों का भी उचित रक्षण किया जाना आवश्यक है।

सुजानपुर टिहरा के नवदेश्वर मन्दिर (जिला हमीरपुर), बैजनाथ मन्दिर (जिला कांगड़ा) नूरपुर का किला (जिला कांगड़ा) हिडिम्बा देवी मन्दिर (जिला कुल्लू) आदि अन्य स्मारकों पर भी रक्षण कार्य चल रहा है।

हिमाचल प्रदेश सरकार को भी प्रदेशीय महत्व के स्मारकों को संरक्षण प्रदान करनां चाहिए ताकि उपर्युक्त स्मारकों की मुरम्मत की जा सके। कुछ स्मारक जिन्हें तुरन्त मुरम्मत की जरूरत है, उनमें रघुनाथ मन्दिर, मणिकरण, रघुनाथ मन्दिर निकट वशिष्ठ कुण्ड मनाली, मंडी नगर के मन्दिर बाणगंगा पर स्थित हरिपुर गुलेर के प्रवेश-द्वार तथा अन्य जिलों में महत्वपूर्ण स्मारक हैं।

सतत् जागरूकता ही इन सब प्रयासों का अर्थ है। लोगों के सक्रिय भाग लेने से ही यह सावधानी प्रभावी हो सकती है। प्रत्येक भारतीय का यह पावन कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रीय धरोहर से स्नेह करे और उसका रक्षण करे।

—:०:—

जोगणी

—चन्द्रशेखर 'बेबस'

देवताओं की घाटी (जिला कुल्लू व संलग्न मण्डी और शिमला जिलों के सम्भाग) कुल्लू के देवताओं से ओत-प्रोत जन-जीवन पर बहुत कुछ लिखा-पढ़ा और परखा जा चुका है कि कैसे यहां के लोग देवताओं से समीप्य रखते हैं। फिर भी कुछ प्रसंग ऐसे जान पड़ते हैं जिन पर ऐसा लगता है कि प्रकाश नहीं डाला गया था कम से कम इन पंक्तियों के लेखक को दृष्टिगत नहीं हुआ। यह जान लेने के बाद कि यहां प्रत्येक परिवार, कुल, ग्राम और हार (किसी एक देवता का प्रभावी क्षेत्र जो बीसों गांवों पर भी आधारित हो सकता है) का पृथक-पृथक देवता होता है। अपने क्षेत्र के व्यक्तिगत जीवन से आगे बढ़कर राजनीति में भी इनकी पैठ पर्याप्त मात्रा में देखी जाती है।

इन देवताओं में पौराणिक, तांत्रिक और स्थानीय देऊ (देव) देवियां नारद आदि बीसियों ऋषि-पक्ष, राक्षस, नाग नारायण आदि अपने विभिन्न रूपों और नामों से व कई एक सिद्ध व पराक्रमी स्त्री, पुरुष भी देवताओं के रूप में पूजते हैं। इसी देऊ परम्परा में कुछ ऐसे भी नाम हैं जिनका किसी भी देवता की जाति या व्यक्ति संज्ञा से मेल नहीं बैठता वे नाम देवताओं के मूल या तन्त्र साहित्य की संस्कृत संज्ञाओं और लोक साहित्य के भी किसी शब्द के तत्सम तो क्या तद्भव भी नहीं जान पड़ते। न जान पड़ें, इससे उनके प्रति श्रद्धा में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे लोगों के आराध्य हैं। उनके मूल स्रोत या शब्द की मौलिकता से तात्पर्य किसी शोध कर्त्ता को हो सकता है श्रद्धालू भक्त को नहीं। तभी तो ऐसे ही अज्ञात नाम गोत्र देवता जमलू और नारसिंह की व्यापकता अक्षुण चली आ रही है। ऐसे ही अनेक थान, वीर नारायण और नाग हैं। बहुत से जानकारों का मत है कि थान और वीर तथा नारसिंह जो यक्ष हैं और इतने सारे नारायणों में भी सर्वाधिक संख्या वाले नागों के समान प्रायः नाग ही अधिक हैं। यद्यपि वीरों-थानों ओर नारसिंह के स्वभाव, प्रभाव, व्यवहार और उपहार भिन्न-भिन्न हैं फिर भी ऐसे प्रमाणों की कमी नहीं जो इन्हें यक्षों में ही सिद्ध करते हैं। वैसे नारसिंह को भी वीर कहते हैं। वीरों के कुछ नाम हैं :—कैला, बराधी, अजिया आदि और पंच वीरों को पांच पांडव भी बताया जाता है। परन्तु यह सभी निर्णय अटकलें मात्र हैं। थान भी स्थान भेद से पुकारे जाते हैं यथा :—शालंगू थान, शालंग का पिरड़ू थान, पिरड़ी थान आदि। थान तो प्रभुत्व सम्पन्न क्षेत्रीय देवता होते ही हैं परन्तु वीर कुलों, वंशों से ही सम्बद्ध घरेलू देवता होने से इनकी सवारियां, जलूस, बाजे आदि उपकरण कम ही होते हैं वैसे यह बड़े उग्र होते हैं। फिर घरेलू देवता होने पर जहां कहीं इनकी स्थिति मानी जाती है वहां वृक्ष आदि में कीलें, त्रिशूल, सांकलें आदि ठुकी हुई देखी जाती हैं।

इस देवता प्रकरण में नारसिंह की स्थिति बड़ी विचित्र मानी जाती है। इसके बारे में भान्ति भान्ति की बातें सुनी जाती हैं : (१) कि यह ब्राह्मण है (२) श्वेत कपड़े पहनता है (३)

मोतिया व मालती आदि श्वेत रंग वाले व सुगन्ध वाले फूलों में रमता है (४) ऊंचे या सम्पन्न रनिवास, महलों व कोठियों में रहता है। किसी स्त्री को पत्नीव्रत भोगता है (परन्तु भरण पोषण की जिम्मेदारी नहीं निभाता) (५) कभी-कभी अपनी रखैल की सिफारिश मान कर कोई अतींद्रिया काम कर डालता है। इसके इन चमत्कारों को अंग्रेजों ने भी परखा व माना है। पहाड़ी भाषा में नारसिंह के एक स्तोत्र का एक टेक पद है "नार्रसिंघा बीरा भौंरिया" आदि लोगों ने इसे नृसिंह अवतार या घोर विष्णु भी माना जाता है।

यह बात प्रायः निश्चित ही है कि 'जोगणी' शब्द संस्कृत में 'योगिनी' का ही तद्‌भव है परन्तु संस्कृत वाङमय में अनेक प्रकार की योगिनियों का उल्लेख मिलता है। वैसे तो इनकी संख्या सर्वत्र चौसठ ही मानी गई हैं परन्तु ज्योतिष शास्त्र के फलित प्रकरण में यह आठ ही योगिनियां हैं जिनके नाम हैं: मंगला, पिंगला, धान्यो, भ्रामरी, भद्रो, उल्का, सिद्धो और संकटा है। इनसे भि न पौराणिक कर्मकाण्डीय और तांत्रिक योगिनियां भी मिलती हैं। एक कोश ग्रन्थ में इनके चौंसठ नाम इस प्रकार लिखे हैं:— १. नारायणी. २. गौरी, ३ शाकम्भरी, ४. भीमा, ५. रक्तदंतिका, ६. भ्रामरी, ७. पार्वती, ८. दर्गा, ६. कात्यायनी, १०. महादेवी, ११. चन्द्रघंटा. १२. महाविद्या, १३. महातपा, १४. सावित्री, १५. ब्रह्मवादिनी, १६. भद्रकाली, १७. विशालोर्क्षा, १८. रूद्राणी, १६ कृष्ण पिंगला, २०. अग्निज्वाला, २१. रौद्रमुखी, २२. कालरात्रि, २३ तपस्विनी, २४. मेवस्वनी, २५. सहस्राक्षी, २६. विष्णुमाया, २७. जलोदरी, २८. मदोदरी, २६ मुक्तकेशी, ३०. घोर रुपा, ३१ महावला, ३२. श्रुति, ३३. स्मृति, ३४. धृति, ३५ सृष्टि, ३६ पुष्टि, ३७. मेधा, ३८ विद्या, ३६. लक्ष्मी, ४०. सरस्वती, ४१. अर्पणा, ४२. आम्बिका, ४३. योगिनी, ४४. डाकिनी, ४५. शाकिनी, ४६. हारिणी, ४७. हाकिनी, ४८. लाकिनी, ४६ त्रिदेश्वरी, ५०. महाषष्टी, ५१. सर्वमंगला, ५२. लज्जा, ५३. कौशिकी, ५४. ब्राह्मणी, ५५. महेश्वरी, ५६. कौमारी, ५७. वैष्णवी, ५८. ऐंद्री, ५६. नारसिंहीं, ६०. वाराही, ६१, चामुंडा, ६२. शिवव्रती, ६३. विष्णुमाया, ६४. मातृका। इनका उल्लेख महाभारत में आने की याद आती है। कर्म कांड के यज्ञ मंडप में एक योगिनी वेदी बनाई जाती है वहां इनका पूजन व अर्चन इन नामों और क्रम से किया जाता है। १. दिव्या योगिनी, २. महायोगिनी, ३. सिद्धयोगिनी, ४. गणेश्वरी, ५. प्रत्यक्षी, ६. डाकिनी, ७. काली, ८. कालराजि, ६. निशाचरी, १०. हकारी, ११. सिद्धि बेताली, १२. हीकारी, १३. भूत डामरी, १४. ऊर्ध्वकेशी, १५. विरुपाक्षी, १६. शुष्कांगी, १७. नर भोजिनी, १८. फूत्कारी, १६. वीरभद्रा, २०. धूम्राक्षी, २१. कालप्रिया, २२. राक्षसी, २३. घोर राक्षसी, २४. विश्व रुपिणी, २५. भंयकरी, २६. विशालाक्षी, २७. वीरकौमारी, २८. चंडी, २६ वाराही, ३० मुंडधारिणी, ३१. भैरवी, ३२. चक्रिणी, ३३. क्रोधा, ३४. दुर्मुखी, ३५. प्रेतवाहिनी, ३६. कुरंगी, ३७. प्रलशेष्टी, ३८. मालिनी, ३६. मंत्र योगिनी, ४०. कालाग्री, ४१. मोहिनी, ४२. वक्ता, ४३. कुंडलिनी, ४४. बालकी, ४५. कौमारी, ४६. यमदूती, ४७. करालिनी, ४८. कौशिकी, ४६. यक्षिणी, ५०. भक्षिणी, ५१. कुमारिका, ५२. यंत्रवाहिनी, ५३. विशालाक्षी, ५४. कामुकी, ५५. व्याघ्री, ५६. रक्ताक्षी, ५७. प्रेत भक्षिणी, ५८. धूर्जटी, ५६. विक्टा, ६०. घोरा, ६१, पालिनी, ६२. विमला, ६३. माला, ६४. सर्वसिद्धा। पूजनान्तर प्रार्थना का एक श्लोक है:—

अनेक भाव सम्पनाः संसारार्णव तारिका! यज्ञं कुर्वंतु निर्विघ्न कार्यो यच्छतु मातरः।

अर्थात अनेक भावों वाली भवां बुधि से तिराने वाली यज्ञ के विघ्न हटा कर कल्याण करे। पुष्पिका में गजानन संज्ञा दी है :—

गजाननाख्य चतुःषष्टि योगिन्यः पूजितास्थ क्षमध्वम् ।

अब जरा एक अन्य प्रकार की योगिनी या जोगणी की अन्य नामों से पूजा की जाती है। इसे भौतिक विकारों के निवारण के लिए किया जाता है। यह तांत्रिक या शावर तांत्रिक जान पड़ती है क्योंकि यह विधान लगभग दो सौ वर्ष पूर्व टांकरी लिपि में उद्धृत एक बहु पुस्तक संकलन में से है। इसका लेखक कांगड़ा, चम्बा, मण्डी और कुल्लू के मध्यवर्ती भंगाल राज्य के 'लड' ग्राम का निवासी उपाध्याय सदानन्द है। ये लाडे पाधे (लड के उपाध्याय) ओझागीरी में प्रसिद्ध रहे हैं। इस पद्धति में जैसा लिखा है उसका नागरी लिपि में उद्धरण हम यहां अक्षरशः कर रहे हैं। जहां पढ़ा नहीं गया वहां स्थान खाली छोड़ा है।

१. जयदा—विजया, जयंती······नंदा, भद्रा, भीमा। 'श्री देवी च अष्टमी तथा अष्टौ पूर्व दिग भागे जोगणीनां नमोनमः !' दिसा पूर्व, इन्हां अठां दी पूजा करनी।

२. हुंकारी—भास्करी दीर्घा, कलह प्रिया, ज्वलांगी तथा त्रिपुरा, पातकी······अग्नि भागे जोगणीनां नमोनमः।

३. दिव्य जोगी—महाजोगी, सिद्ध जोगी, गणेश्वरी, शाकिनी, कालरात्रि, उर्ध्वकेशी, निशाकरी, अष्टौ दछण दिग भागे जोगणीनां नमोनमः।

४. राक्षसी—घोराव,······ भयंकरी, शंकरी, रौद्री, वीताली, मांस भक्षणी, अष्टौ वै-मृज्ञ दिग भागे जोगणीनां नमोनमः।

५. घंभीरी—भीषणी चैव कलमाऊपिच, पानकी, उल्की, भैरवी देवी, भद्रा, नंदा अष्टौ दिगभागे जोगणीनां नमोनमः।

६. वीर भद्रा तथा काली, कृपाली, विकृतानमी, कोट राक्षी, वीर भद्रा च वायुवेगी, भयंकरी, अष्टौ वामवे दिग भागे योगिनीनां नमोनमः।

७. विशाली—फंकनी ज्रा······ इच्छा सिद्धि, प्रजातुष्टि, सर्व सिद्धि, ब्राह्मणी, क्षेत्रणी अष्टौ उतर दिगभागे योगनीनां नमोनमः।

८. ब्राह्मणी—वैष्णवी, रौद्री मातंग गी, चंडकेश्वरी, बाराही, नारसिंही, शिवदूती नमोस्तुते। अष्टौ ईशान दिगभागे जोगणीनां नमोनमः। चौहट जोगणी इनी विधी बख बख अठां दी पूजा करणी। उद्यापने गृह प्रतिष्टा-देवालय-न्हौण पंजवीरी—इति जोगणी पूजा समाप्त। अन्त में लिखी दिन काती प्र० १६ श्री राये पृथ्वीपाले लिखाये सं० ६२।

अब इनके बाद उन जोगणी की बारी आती है जिनका कहीं उल्लेख नहीं है और व्यापकता की दिशा में प्रायः सर्वत्र व्याप्त हैं। उन्हें यदि "लोक जोगणी" कहा जाए तो उचित रहेगा। परन्तु इनसे पूर्व यूरोप आदि देशों की पंखों वाली (*Fairy*) फेअर-ई जिनका धार्मिक साहित्य और कला क्षेत्र में अंकन मिलता है, इस्लामी साहित्य में भी हूर और परी (पंखों वाली) आदि लिखा मिलता है। यद्यपि इनके प्रत्यक्ष साक्षातकार न होने से इन्हें अतींद्रिय शक्ति वाली कल्पित नारियां माना है।

और भोटिया में इनका वर्ण संनशय या नकारात्मक नहीं है । हिन्दू साहित्य में प्रत्यक्ष दर्शन के बिना भी अन्यान्य देवताओं की भान्ति अर्चन पूजन होता है और इनकी शक्ति सामर्थ्य को भी सकारा है । यथा :—

आवाध्याम्यहं देवी ! योगिनी ! परमेश्वरीः
योगाभ्यासेन संतुष्टाः परं ध्यान समक्षितः ।

दिव्य कुंडल संकाशाः दिव्य ज्वाला स्त्रिलोचनः
मूर्तिमतीर मर्ताश्च उग्राश्चवोग्र रूपिणी ।

पूजितास्तुना: मया भक्तया सुख सम्पत्ति सिद्धे ।
आयुरारोग्य मैश्वर्य सदा सदा यच्छतु मातरः ॥

ठीक इसी के अनुसार इधर की लोक परम्परा में माना जाता है बल्कि कुछ अधिक ही । अर्थात् योगाभ्यास में निरत, ध्यान समानित, दिव्य भरणों वाली निराकार व साकार दिव्य लपटों, तीन नेत्रों वाली और भयंकरी आदि इनके नामों से भी जान पड़ता है कि ये सौम्य और रौद्र दोनों प्रकार की होंगी । इधर की लोक जोगणियां भी कुल्लू में हाछी (स्वच्छ) और बगड़ी (घटिया) कहलाती हैं । हाछी के रंगदार वस्त्र, गोरा रंग, सुडोल देह और गेहूं भोज्य होता है । धूम्रपान, चमड़ा (अभक्ष्य जीवों का) जूठ (रजा, स्राव और प्रसव की अस्पृश्यता) वर्जित हैं और अत्यंजों का सम्पर्क भी । जबकि 'बगड़ी' इन निषेधों से मुक्त काले रंग व वस्त्रों वाली भद्दे शरीर की मोटा अनाज खाने वाली होती हैं । इनका स्वभाव और प्रभाव भी तदनुरूप ही माना जाता है । सराज क्षेत्र में इनकी चार जातियां रूप, गुण और स्वभावानुसार मानी जाती हैं । वे हैं :—सिद्धा, शंखिनी, डंकिणी, भंखिणी उग्र और सौम्य भाव वहां भी झलकता है ।

इन जोगणियों की व्यापकता कुल्लू के तथा आसपास के ही क्षेत्र में नहीं चम्बा के भी कई क्षेत्रों में है तथा कांगड़ा में तो ये परी नाम से स्त्रियों में वास करती हैं । इनके विधि निषेध भी इनको मानने पड़ते हैं यथा : आभूषणों में इनकी प्रतिमाएं गले में धारण करना, विशेष दिनों में पूजन कुमारी में यदि परियां हो तो व्याह से पूर्व उनकी मान्यता अनिवार्य रहती है । कांगड़ा नगर में ऐसा एक तीर्थ स्थल है जिसे 'घरुंड' अछरा (अप्सरा) कुंड कहते हैं । यह चट्टानों और गुल्म वृक्षों से घिरे एक गुप्त से स्थान पर है जहां १५-२० फुट की ऊंचाई से प्रपात गिरता है । जिसका जल धोबी घाटों से आता है वहां एक देवी का मन्दिर है । बहुत सी निस्संतान स्त्रियां यहां से गोद भर कर लौटती हैं । यह घरुंड भगवती कहलाने वाली देवी हो सकती है । अप्पसरा परी ही हो, जिसे स्थान भेद से कई नामों से पुकारा जाता है । हो सकता है जोगणियां भी अप्पसराएं ही हों क्योंकि लक्षणों से ये समान सी जान पड़ती हैं ।

वैसे योगिनी शब्द का अर्थ योगी का स्त्रीलिंग योग साधना करने वाली स्त्री अथवा योगी-जोगी (कनफटे नाथों की गृहस्थ जाति) की सी हो, जैसे कुल्लू अंचल की भागा सिद्धि नाम की एक देवी जो वीर नाथ नाम के योगी जो अब गोहरी देऊ कहलाता है कि सहोदर या गुरु बहिन थी । जहाँ हम आकाश या अंतरिक्ष चारिणी अदृश्य और चमत्कारिणी अप्सरा आदि का वर्णन करते हैं

तो विचार आता है कि हठयोग की अणिमादि सिद्धियों द्वारा भी तो ऐसी उपलब्धियां सम्भव हैं परन्तु वे योगिनियां अमर तो नहीं हो सकती अतः अमर या देव योनि में से ही इनका होना निश्चित ठहरता है क्योंकि अप्सराओं को देवांगना भी तो कहा जाता है और गन्धर्व किन्नरों की भांति ये भी देवताओं के मनोरंजन की साधन भी हो सकती हैं। इन्हें देवताओं की वैश्या भी माना गया है। आज से छः वर्ष के लगभग, पूर्व बचपन में देखे 'इन्द्रसभा' नाटक का एक पद आज भी स्मरण है। "गाती हूं और नाच सदा काम है मेरा आकाश में पुखराज परी नाम है मेरा" कई प्रकार की समानता होते हुए भी अधिकार पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि अप्सराएं और जोगणियां एक ही वस्तु है क्योंकि जोगणियों का सम्मान बहुत बड़ा है।

ऊंचे पर्वत शिखरों, कई सरोवरों और घाटी जिसे घाट, घट्टा, कठीया, कंढा, गलू, दर्रा आदि कहते हैं जहां से पर्वत पार किया जाता है इसलिए इन्हें लाँघते हुए देवता राजा रानी या दुल्हा, दुल्हन की पालकियां झंडे आदि समस्त रंगदार सामान को फीके या बेरंग वस्त्रों से ढांप दिया जाता है अन्यथा जोगणी चक्र यजिगण्याह से जकड़ जाने न मूछित आदि होने अथवा जोगणियों के साथ हो लेने का भय रहता है। कंढी लांघते हुए साधारण यात्री भी अधिक नहीं तो फूल ही भेंट करके आगे बढ़ता है। कई लोग बड़ी छोटी पत्ताकाएं ले जाकर काली माता नाम से या जोगणी नाम से चढ़ाते हैं। कई घाटियों पर झंडियों की लम्बी-लम्बी मालाएं इसी विश्वास की प्रमाण हैं।

जोगणियों के बड़े छोटे मन्दिर भी यत्र तत्र पाए जाते है। कई तो इतने छोटे कि अन्दर हाथ ही घुस सकता है और हाथ से उठा कर घरों के छप्पर पर भी रखा जाता है। जोगणी के मन्दिर में रणिवास जैसा 'नरोल' (पर्दा) होता है। साधारण आदमी उसमें झांक नहीं सकता। यह कठोर वर्जन है परन्तु बिना मन्दिर कई स्थानों में दाड़िम काकड़-मोहरन-खिड़क आदि पेड़ों पर डोरियां टंगी दिखाई पड़े वहां जोगणियों का स्थान समझना चाहिए। वहां भी विधि निषेध के अनजाने में भी उलंघन बख्शा नहीं जाता अतः उन पर लाल 'सालू' (वस्त्र) पर्दा या उपचार रुप से टंगा रहता है। ऐसी जोगणियां कुल्लू मण्डी पथ पर बजौरा नगवाईं के मध्य 'भल्याण कूणी' में ओट-पंडोह के मध्य न्होगी में और ओट-बंजार पथ पर भी अपना परिचय देती रहती है। सरकारी कर्मचारियों का एक दल जब पेड़ों को कटाई के लिए चिन्हित करने लगा तो एक बुढ़िया द्वारा रोकने पर भी जब उन्होंने उपेक्षा की तो बुढ़िया ने कहा "मेरा एक चुल्लू पानी और एक मुट्ठी माटी इस चौंस का उत्तर होगा" बिना सम्भावना के रात में नाला चढ़ा और उस स्थान को बहा ले गया। केवल एक मनुष्य जो सेवक था नाले के उस पार रुक जाने से समाचार सुनाने को बचा रहा। यह स्थान सोलह सुर्गणी नाम की जोगणियों का है। इनका क्षेत्र सामने का सुर्गपुर और इनका स्थान कलौण का पाराशर मन्दिर का सर है। सराज के त्रिलोकपुर में बाहू ग्राम का जगण्याह बड़ा प्रबल है जिनकी पूजा के लिए इलाके का प्रभावशाली देवता 'श्रृंगी ऋषि' वर्ष में दो बार बाहू में जाता है। इसी इलाके के सजवाड़ गांव में भी बड़ी चमत्कारिणी जोगणियां हैं। बहुत सारे ग्राम देवताओं के साथ भी जोगणियां रहती हैं। कई बार जोगणी वाले देवता के यहां मेहमान आने वाले दूसरे ग्राम देवता के साथ भी अदृश्य रुप में ही होती है और उस गांव में जाकर वहां वालों को अपनी स्थापना के लिए बाध्य करती हैं।

कुल्लू के आस पास के क्षेत्र में जोगणियों की कई जातियां हैं। यथा :— जोगणी-फुंगणी-नौणी-त्रांगणी-सोला सुर्गणी—कूहटी, कुपड़ी, भोट, भोटली आदि। कुछ लोगों का मत है कि इस समूह

का समष्टि नाम है और दूसरे नाम जाति या स्थान भेद से जुदा-जुदा कुछ समष्टि नाम जगणाह या जगण्याह बताते हैं।

जोगणियां वैसे तो अंतरिक्ष चारिणी और अतींद्रिय और अदृश्य होती हैं परन्तु बहुत लोग इनके प्रत्यक्ष दर्शन के प्रमाण देते हैं। कुछ का कहना है कि यह सभी कुमारी लड़कियों के रूप में दीखती हैं परन्तु कुछ लोग फुंगणियों को बालू-बलाक या नथ बेसर पहने सुहागिनों के रूप में और शेष को कुमारिकाएं बन कर दर्शन देती हैं। उन्हीं में से हाछी बगड़ी के पूर्वोक्त रूप भी सुने गए हैं। बढ़ाई गांव के हीरा पण्डित ने जब गांव के पास के टीले की नोक पर लाल-हरे और पीले वस्त्रों वाली तीन अपरिचित लड़कियों को हास विलास करते देखा तो सैंकड़ों फुट नीचे गिर पड़ने की शंका से उन्हें पुकार कर पीछे हटने को कहा परन्तु जब बात हंसी में टाल दी गई तो हीरालाल ने गांव वालों को पुकारा कि शहर की यह चटकीले कपड़ों वाली ढीठ लड़कियां बड़े खतरनाक स्थान पर बैठी अठखेलियां कर रही हैं इन्हें शीघ्र हटाइए। परन्तु गांव वालों को साथ लाया तो उधर आस-पास कहीं कोई नहीं था। लोग टीले पर चढ़कर झांकने लगे कि नीचे न गिर पड़ी हो। तब तक एक दो को स्मरण हो आया कि इस गांव में यह घटना नई नहीं है। वहां जोगणी का मन्दिर है।

इस प्रकार मानवाकार में देखने का तो नहीं परन्तु एक दूसरे ही रूप में इन्हें देखने का इन पंक्तियों के लेखक को भी सौभाग्य मिल चुका है। बात कोई तीस वर्ष पुरानी है जब एक मेले में दो देवता अपने पूरे रंग बिरंगे और धूमधाम वाले जलूस के साथ एक धार्मिक नाच में प्रवृत थे कि सहसा जलूस में जकड़न आने से गति अवरुद्ध हो गई। देवताओं की पालकियां उछलने और झटकने लगीं। गूर (जिनमें स्थाई रूप से देवता आता है) लोग खुले बालों से ऊंचे-ऊंचे उछलने लगे। उनके इलावा और भी बहुत से लोग देवावेश में उछलने लगे। सभी लोग रहस्य को भांप गए कि जगण्याह पड़ा है। बजाने वालों ने बड़े उग्र ताल बजाए। सतूओं के खलड़ (बकरे की खाल के थैले) वालों ने मुठ्ठियां भर भर कर सतू उड़ाए। चारों ओर धुन्ध छा गई। गूरों ने लोहे की शांकलों से अपनी-अपनी पीठ पीटते हुए सब लोगों के चक्कर काटे तब कहीं पन्द्रह मिनट में यह आवेश समाप्त हुआ। जब यह सब हो रहा था तो एक जानकार मुझे दूर ले जाकर आकाश में दिखाने लगा। हमने देखा इन्द्र धनुषी रगों में से परस्पर कुछ ऐसी हलचल मची थी जैसे पानी के चंचल भंवर में मिट्टी का तेल गिराने से होता है।

इस प्रकार की घटनाएं प्रायः देवताओं के जलूसों में होती रहती हैं और इनके चमत्कारों के अनेक किस्से भी सुने जाते हैं। परन्तु जो कुछ हमने स्वयं देखा है कि कंजू नाम का एक गरीब गडरिया जोगणियों के वरदान से कई वर्षों तक सिद्ध जैसा परोक्ष वक्ता रह कर अन्तिम दिनों में उन्हीं के दोष से मानसिक संतुलन खोकर विक्षिप्त सा हो गया था। अभी कुछ दिन पूर्व ही उसकी मौत हुई। हां जोगणियों के कोप से नर नारियां बांवरे हो जाते हैं या नेत्र या चर्म रोग भी होते हैं। इनकी प्रसन्नता के लिए लकड़ी या पत्थर की पटियों पर कुंकुम सिंधूर से मूर्तियां सी बनाकर कुंगु-लाल फूल, डोरी, सालू (लाल) तथा मीठे व छोटे-छोटे बबरुओं से पूजा की जाती है। इसे जोगणी की पटड़ी देना कहते हैं। यह घर में या जोगणी के स्थान में दी जाती है या पीछे उद्धृत टांकरी पुस्तक में लिखे विधान से पूजा जाता है।

कुल्लू के राजपरिवार में विशेष अवसरों पर 'गाशी पूजन' कुछ इसी ढंग से होता है । बकरा भी भेंट स्वरूप दिया जाता है । निस्संदेह गाशी आकाशी अर्थात जोगणी का ही तद्भव शब्द है । सूर्योदय के समय कूंगू चूर्ण हथेली पर रख कर सूर्य की ओर फूंक से उड़ाने से नेत्र विकार शांत होते हैं । कुंगणी जाति की या इन सभी जोगणियों को सम्मान के रूप में देवती परमेसरी या सुरगणी कहा जाता है । यह वर्षा के संदर्भ में उपयोगी सिद्ध हुई हैं । तिहन शिरढ़ आदि स्थानों में मन्दिर के इलावा यह गिरि श्रृंगों पर अधिक मनाई जाती हैं । ब्यासर गांव से ऊपर 'छापलांग' सामने के पहाड़ पर "लोहड़ी आसरी" और सारी ठाणा में भादों शुदि के प्रथम वृहस्पति वार को फूंगणी पूजा का मेला लगता है । जहां सभी क्षेत्र अपनी-अपनी फूंगणियां मनाते हैं ।

ऊंचे पर्वतों पर उगने वाली देवदार जाति जैसी पत्तियों वाली वनस्पति की पत्तियों का साग और उसी का धूप इन्हें बहुत पसन्द आता है । इसे बेठर कहते हैं । इधर के देवताओं के सात बेठर का बहुत सम्बन्ध है । यही एक मात्र झाड़ी है जिसका नंगे पर्वत पर गडरिये लोग ईंधन के रूप में उपयोग करते हैं ।

इस प्रकार पर्वतीय जीवन का एक धार्मिक अंग जन जीवन का सहारा थे जोगणियां अधिक विस्तार पूर्वक शोध की अपेक्षा रखती हैं ।

चन्द्रशेखर 'बेबस'
आलोक, ढालपुर मैदान, कुल्लू ।

—:०:—

कला पारखी एवं विजेता-मेरु वर्मा

—अमरसिंह रणपतिया

हिमाचल प्रदेश का जिला चम्बा सन् १९४७ से पहले एक स्वतन्त्र रियास्त थी जिसका विलय भारतसंघ में २२ अन्य छोटी-छोटी रियास्तों के साथ हुआ। चम्बा की पुरातन राजधानी वर्तमान तहसील भौरमौर थी जो पुरातत्व अवशेष के लिए विशेष स्थान रखती है। भरमौर को उस समय ब्रह्मपुर से जाना जाता था। दसवीं शताब्दी में राजा शैल वर्मा के वर्तमान चम्बा नगरी को राजधानी बनाया जो 'चम्पा' से अपभ्रंश हो 'चम्बा' बना।

ब्रह्मपुर की नींव चम्बा राज्य के प्रथम राजा मरु वर्मन ने ५५० ई० के लगभग डाली (वर्तमान लेख में चम्बा के आठवें राजा मेरु वर्मा का वर्णन किया जाएगा। मेरु चम्बा के प्रथम राजा और ब्रह्मपुर राज्य के संस्थापक थे)। चम्बा की वंशावली के अनुसार चम्बा का राजवंश सूर्यवंशी होने के नाते रघुवंशी भी हुआ। ऐसी परम्परा हैं कि इनके पूर्वज अयोध्यावासी थे परन्तु कालान्तर में वे अयोध्या से गंगा की ऊपरी घाटी में कहीं 'कल्पा' में जा बसे, जिस स्थान को इतिहासकार अब तक खोज नहीं भके हैं अतः यह स्थान खोज में धूमिल रहा है। पुराणों में विभिन्न स्थानों पर राजाओं की वंश परम्परा का जिकर हुआ है। इक्षवाकु कुल में हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित हुए, रोहित से हरित और हरित से चम्प हुए। चम्प ने गंगा के किनारे चम्पापुरी बसाई। इसी प्रकार इसी वंश में चम्प के पुत्र विजय और लगातार भरुक, बृक, बाहु तथा औरव ऋषि के संरक्षण में सगर, सगर से असमजस, उससे अंशुमान, अंशुमान से दिलीप और फिर उनसे भगीरथ हुए, इन्हीं के प्रयत्न से गंगावतरण हुआ इसी प्रकार अटूट क्रम में कितनी ही पीढ़ियों के बाद रघु, अज और महाराजा दशरथ हुए। पुनः राम के पुत्र कुश से फिर वंश परम्परा चली और उसी से चम्बा राजवंश का सम्बन्ध इस श्लोक से जोड़ा गया :—

जातो रोहित भूपालो हरितस्तस्य च आत्मजः।
चम्पस्तस्य आत्मजश्चम्पापुरी येन विनिर्मेता।

इससे फिर स्पष्ट है कि रोहित के पुत्र हरित हुए और उनके पुत्र चम्प ने चम्पापुरी बसाई जो वर्तमान चम्बा (चम्पा) न हो कर पुराणों में वर्णित गंगा के किनारे बसाई चम्पापुरी है। दूसरी ओर अन्य श्लोक में वर्तमान चम्बा नगरी को शैल वर्मा द्वारा बसाए जाने के सम्बन्ध में इंगत हुआ है :—

विजितस्य क्षत्रियानयुद्धे पुरी चम्पां चकार ह।
पुरैव चम्पेक तालङ्कृताम् देव्याभि रक्षताम्।
चम्पावत्यैव महिषादीन्ह हतैव रावती लटे॥

अर्थात क्षत्रियों को युद्ध में मारकर रावी नदी के तट पर चम्पा (चम्बा) को स्थापित किया गया जो पहले ही चम्पा के वृक्षों से सुसज्जित थी और जिसकी रक्षा भगवती चम्पावती, जिसने कि महिषासुर को मारा, करती है।

वंशावली रचयता ने शैल वर्मा द्वारा चम्पा नगरी को रावी नदी पर बसाना और चम्प राजा द्वारा चम्पापुरी को गंगा तट पर स्थापित करना, दोनों प्रसंगों को वंश परम्परा को बनाए रखने के लिए किया है अन्यथा इतने दूर के प्रसंग को हरित से ढूंढने का कोई तुक नहीं। इसका वर्णन वंश परम्परा को एक सूत में पिरोने के लिए भी किया गया होगा। वंश प्रेम और कुल मर्यादा को अटूट रखने के लिए भी इन दोनों सम्बन्धों को जोड़ा गया है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि चम्बा नगर का चम्पा नाम क्यों रखा गया। प्रथम इसलिए कि यहां चम्पक वृक्ष अधिक थे। दूसरा कारण जनश्रुति के आधार पर शैल वर्मा की पुत्री का नाम चम्पा था जिसे यह स्थान अधिक पसन्द आया अतः राजा ने उसी के नाम पर यहां नगर बसाया। तीसरा कारण पौराणिक अनुश्रुति के आधार पर यहां दिए गए श्लोक के अनुसार शैलवर्मा ने चम्प राजा के पद चिन्हों पर चल कर गंगावत रावी तट पर इस स्थान का नाम वंश परम्परा को कायम रखते हुए चम्पा रखा जो चम्प राजा की बसाई गंगा तट पर चम्पापुरी की याद दिलाता है शायद इसीलिए रोहित, हरित और चम्प जैसे राजाओं की अटूट विस्मृत कड़ी को ताजा किया गया है।

वंशावली और जनश्रुति के अनुसार मरु कल्पा के राजा थे। वे महान तपस्वी और सत्य प्रेमी थे। वह साधु वृति के व्यक्ति थे। बड़ी तपस्या के बाद उनको तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। उनके नाम इस प्रकार थे : जयस्तम्भ, जलस्तम्भ और महास्तंभ। मरु ने अपने सबसे बड़े लड़के को कल्पा का राजा बनाया। शेष दो को साथ ले कर यात्रा पर चले। उन में से एक को कहीं कश्मीर में राजा बनाया। अन्य तीसरे छोटे लड़के जयस्तंभ को ब्रह्मपुर (वर्तमान भरमौर का राज्य स्थापित कर उसे गद्दी पर बिठाया और स्वयं अपने पूर्वजों की नगरी कल्पा वापस गए और थोड़े ही दिनों में साधु बन कर कहीं चले गए। विद्वानों ने मरु के लड़कों के नामकरण पर सन्देह प्रकट किया है कि इस प्रकार के अनार्य से नाम क्यों ? इसमें अश्चर्य करने की आवश्यका नहीं क्योंकि मरुवर्मन के पुत्रों की उत्पत्ति बड़ी तपस्या के बाद हुई थी अतः शायद उत्तम नाम रखना ठीक न समझा हो जैसे कि कई अन्धविश्वासों के कारण आज भी लोग अपने अधिक प्रिय संतान के नाम का उत्तम संज्ञा न देकर कई प्रकार की ऊट-पटांग की संज्ञा देते हैं। इसी प्रकार वंशाली में जय स्तंभ, जल स्तंभ और महास्तंभ के अतिरिक्त अन्य राजाओं कीश्रृंखला प्रस्तुत हुई है जो इस प्रकार है—आदि वर्मन्, देव वर्मन्, कांतारा, प्रगल्भ, अजय वर्मन्, मेरु वर्मा इत्यादि वंशावली में अजय वर्मन् को मेरु वर्मा (आठवें राजा) के पहले माना है जबकि शिलालखों में अंकित इतिहास के अनुसार अजय बर्मन् मेरु वर्मा के बाद में हुए हैं।

मेरु वर्मा के समय की मूर्तियों पर खुदे शिला लेखा ने इतिहास के पन्ने खोल दिए हैं जिनके अनुसार मेरुवर्मा के पिता देव वर्मन् थे। बलवर्मन् दादा और आदित्य बर्मन् महा पितामह थे। देववर्मा को कहीं-कहीं दिबाकर वर्मन् लिखा है और आदित्य वर्मन् को आदिवर्मा भी लिखा है। इन राजाओं की काल गणना के बाद विद्वान इस निश्चय पर पहुंचे हैं :—

मरु वर्मन् (५५० ई० से)
आदित्य वर्मन् (६२० ई० से)

बल वर्मन (६४० ई० से)
देव वर्मन (३६० ई० से)
मेरु वर्मा (६८० ई० से)

जैसे कि ऊपर कहा गया है कि मरु वर्मा ने सन् ५५० ई० के आसपास ब्रह्मपुर राज्य की नींव डाली। स्थानीय जनश्रुति है कि ब्रह्मपुर का नाम ब्रह्माणी देवी के नाम पर पड़ा। इसमें कोई सदेह नहीं कि ऐसा हुआ हो। देवी ब्रह्माणी का मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में भरमौर से लगभग दो मील को दूरी पर पहाड़ी की तराई में है। विशेष पुरातन मूर्ति इस समय कोई नहीं है। केवल पत्थर की साधारण सी मूर्तियां आज भी विद्यमान हैं। इस देवी की अब भी बड़ी मान्यता है। मनीमहेश यात्रा के समाप्त होने पर यहां एक यात्रा (मेला) होता है जिसे ब्रह्माणी यात्रा कहा जाता है। मनीमहेश जाने वाले यात्री यहां से निकलने वाले जल से स्नान करते हैं। कुछ व्यक्ति देवी के मन्दिर के पास जाकर नहाते हैं जहां नहाने के लिए एक छोटा सा कुंड बना है। और कुछ श्रद्धालु ब्रह्मपुर के पास ही नाले के माध्यम से आने वाले जल में अपना शरीर धो लेते हैं।

हियूनसांग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष में सन् ६३५ ई० से ६४० ई० तक भारत की यात्रा पर रहे। इनके स्मृति ग्रन्थ में भी ब्रह्मपुर का वर्णन हुआ है। इनके अनुसार यह विस्तृत साम्राज्य हरद्वार के समीप स्थित मतिपुर से ३०० 'ली' दूर था। विद्वानों ने ३०० 'ली' की गणना पच्चास या साठ मील की है जिसने इतिहासकारों को संदेह में डाल दिया है कि यह वर्तमान ब्रह्मपुर नहीं हो सकता। दूसरी ओर यह विस्तृत साम्राज्य ४००० ली में फैला था विद्वानों को यह भी असम्भव दिखाई देता है परन्तु दूसरी ओर हियूनसांग ने इसे पहाड़ों से घिरा पाया है और पड़ोसी देश कुलुत्, जलन्धर, टक्क (या टाकि देश) बताय हैं जो हर दशा में ब्रह्मपुर (चम्बा राज्य) के पड़ोसी देश थे। उस समय कांगड़ा, जलन्धर में शामिल था। आर्ट आफ हिमाचल प्रदेश के पृष्ठ संख्या १३६ पर मसरूर को जालन्धर की राजधानी संभावित की है। आज भी गद्दी लोग कांगड़ा और इसके आसपास के तलहटी के स्थानों को 'जांधर' की संज्ञा देते हैं जो सम्भवतः जलधर का अपभ्रंश हो। साथ ही कुछ विद्वानों ने इस पर भी संदेह प्रकट किया है कि शायद हियूनसाङ्ग को किसी राजा ने अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए इतना फासला बताया हो। हियूनसांङ्ग को भी विस्तार और फासले सम्बन्धी गलती लग सकती थी क्योंकि उस समय का इतना विस्तृत राज्य खोजने में विद्वानों ने असमर्थता प्रकट की है। कन्निघम ने कमाऊं में दो ताम्र लेखों के आधार पर ही कमाऊं में ब्रह्मपुरै होने फी सम्भावना प्रकट की परन्तु अन्य विद्वानों ने इतने छोटे क्षेत्र को ब्रह्मपुर मानने से इन्कार कर दिया है। ***Dr. Herman Goetz*** ने भी इस पर काफी कुछ लिखा है उन्होंने गुरजार (गुज्जर राज्य) पर टिप्पणी की है। उनके अनुसार मध्य पंजाब, रावी का पश्चिमी भाग, गुज्जर राज्य था जिसकी राजधानी टक्का (ताकि देश) थी। दूसरी ओर थानेश्वर साम्राज्य का वर्णन हुआ है और संभावना प्रकट की है कि शायद उस समय चम्बा का ब्रह्मपुर राज्य थानेश्वर (कन्नौज) के अधीन रहा हो और स्वतन्त्र राज्य न हो। चाहे जो हो परन्तु विवाद तो हियूनसांङ्ग के ब्रह्मपुर साम्राज्य से है। उस समय एक ओर जलंधर, दूसरी ओर कुलूत् तीसरी ओर ताकि देश, चौथी ओर स्वर्णभू (ब्रह्मपुर के उत्तर में) जिसे विद्वानों ने तिब्बत में माना है और निसंदेह यह स्वर्णभू रही होगी क्यों चन्द्रभागा नदी में अब भी सोना मिलता है जिसकी रेत को छात-छान कर स्थानीय लोग सोना निकालते हैं। लाहुल में अब भी इस सोने के बने आभूषण देखे जा सकते हैं। एक ओर

तिब्बत में उस समय सोङ्चन गोम्पों का राज्य काफी विस्तार पर पहुंचा था। काश्मीर के ललितदित्य मुक्त पीड़ा का राज्य विस्तार भारत में अपनी परिकाष्ठा तक पहुंचा था। उन्होंने पंजाब कन्नौज, दरदिस्तान तथा काबुल को अपने अधीन कर लिया था। परन्तु यह घटना हियूनसाङ्ग के बाद की है। क्योंकि ललितदित्य मुक्तपीड़ा का शासन काल ७२४ *A. D.* से आरम्भ होता है।

इस तर्क पर कि अब तक चम्बा के ब्रह्मपुर के अतिरिक्त कहीं अन्य स्थान पर पुरातत्वावशेष प्राप्त नहीं हुए हैं, चम्बा गैजिटियर अपने इस निष्कर्ष पर पहुंचा है :—

"......Naturally we should infer that, this must have been Brahampura-Brahmor in Chamba, situated in the very heart and in the best defensible valley of the State......" Page 98.

दूसरे ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं जिससे प्रमाणित होता है कि सातवीं शताब्दी में जब हियूनसाङ भारत में आये उस समय ब्रह्मपुर का राज्य विस्तार एक ओर कुल्लु तक हो चुका था और दूसरी ओर रावी नदी के साथ-साथ छतराढ़ी और गूं तक हुआ था अतः ब्रह्मपुर अब छोटा सा राज्य नहीं रह गया था। कुछ प्रमाण तो यहां तक पहुंचे कि शायद कुलूत् देश भी कुछ समय तक चम्बा के अधीन रहा हो। इन तथ्यों का वर्णन विस्तृत रूप से इसी लेख में किया जा रहा है।

कहीं ऐसा वर्णन है कि कुल्लु के राजा जारेश्वर ने ६५० ई० के लगभग अपने खोए राज्य कुल्लु को पुर्नविजित कर प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि कुछ समय तक कुल्लु चम्बा के अधीन रहा हो। चम्बा गजैटियर के अनुसार—"That Kullu thereafter formed part of the kingdom, appears from Baisakhdatta's Drama, Mudra Rakshas, in which the king of Kullu (Kuluta) is called Chittra Verman, no such king is otherwise known to us, and the name may be imaginary, but its suffix Verman indicates that he was a Brahampura feuditory and not an independent prince." Page 104.

कुल्लु की ऐतिहासिक शृंखला में वर्णन मिलता है कि कुल्लु के राजा दालेश्वरपाल के समय चम्बा के राजा उमेर (मेरु) ने आक्रमण किया जिसमें कुल्लु के राजा मारे गए। दूसरे कुल्लु नोट के अनुसार कुल्लु के नरेश अमरपाल चम्बा (ब्रह्मपुर) के राजा द्वारा अपने एक पुत्र को छोड़ अन्य सभी के साथ मारे गए। यह बच्चा राजकुमार शीतलपाल, राजा बुशह के पास आजीवन कैद रहा। शीतलपाल के बाद पांच पीढ़ियों तक गैप मिलता है जिसका अर्थ हुआ कि इन पांच पीढ़ियों तक संभवतः कुल्लु ब्रह्मपुर (चम्बा) के अधीन रहा हो। इसकी पुष्टि हरकोर्ट द्वारा लिखी पुस्तक कुल्लु–लाहुल और स्पिति के पृष्ठ ११३–११४ पर हुई है।

कुल्लु के साथ चम्बा (ब्रह्मपुर) का सम्पर्क केवल लाहुल और रोहटांग दर्रे से होकर ही सम्भव है। अतः स्पिति के राजा के साथ ब्रह्मपुर नरेशों के सम्पर्क सौहार्दपूर्ण रहे होंगे। कहीं ऐसा भी वर्णन मिला है कि कुल्लु पर आक्रमण स्पिति राजा की सहायता से हुए। अतः निर्विवाद है कि सातवीं शताब्दी में ब्रह्मपुर राज्य का विस्तार और प्रभाव कुल्लु राज्य तक हो गया था।

मेरु वर्मा के समय की मूर्तियां और मन्दिर :–

यह सर्व विदित है कि मेरु वर्मा विजेता ही नहीं अपितु कला पारखी भी थे। उनके समय की बनाई गई मूर्तियां और मन्दिर उस समय पर प्रकाश डालती हैं। उस समय के बने मन्दिर और मूर्तियां निम्नलिखित हैं :—

भरमौर में महिषमर्दनी (लक्षणा देवी), गणेश की मूर्ति, नन्दी बैल की मूर्ति, सूरजमुखी मन्दिर। छतराढ़ी में शक्तिदेवी का मन्दिर और मूर्ति। गूं, जिसे उस समय शिवपुरी कहते थे, वहां के असंख्य शिव लिंग तथा अन्य प्रस्तर मूर्तियां। इन मन्दिरों और मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

भरमौर की मूर्तियां तथा मन्दिर :—

भरमौर (ब्रह्मपुर) में मेरु वर्मा ने मनीमहेश का मन्दिर निर्मित किया जो शिखर शैली का है। मन्दिर में एक विशालकाय शिव लिंग है। मनीमहेश यात्रा के समय जाने वाले श्रद्धालु यात्री प्रथम इसी मन्दिर मे अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं और मनीमहेश रवाना होने की आज्ञा लेते हैं। मनीमहेश डल (झील) में होती है जो भरमौर से आगे दो दिन का रास्ता है। मनीमहेश मन्दिर भरमौर में बना है।

मेरु वर्मा अन्य निर्मित मन्दिर महिषमर्दनी का है जिसे स्थानीय लोग लक्षणा (लखणा) देवी कहते हैं। यह मन्दिर लकड़ी का बना है। इस पर विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियां चित्रित हुई हैं। अब लकड़ी पुरानी होने के कारण इस की चित्रकारी में धूमिलता आना स्वाभाविक है। *Dr. Harman Goetz* ने चम्बा के चार पुराने लकड़ी के मन्दिरों का अध्ययन किया है जिनमें एक यह भी है। मन्दिर पहाड़ी शैली का है। मन्दिर के गर्भगृह में अष्टधातु की बनी चारफुट की मूर्ति है। मूर्ति नग्न न हो विशेषरूप के वस्त्रों से निभूषित हुई है। गुप्तकालीन मूर्तियों को आभूषणों तथा वस्त्रों से सुसज्जित करने की प्रथा थी। मूर्ति की पीढ़ी पर ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख खुदा है जो मेरु वर्मा कालीन इतिहास पर प्रकाश डालता है। अन्य दो मूर्तियों गणेश और नन्दी पर भी इसी प्रकार की ब्राह्मी लिपी में पंक्तियां खुदी हैं। मूर्तिकार ने अपना नाम इन तीनों मूर्तियों में गुग्गा दिया है तथा मेरु वर्मा को महाराजधिराज की संज्ञा से सम्बोधित किया है। इससे ज्ञात होता है कि मेरु वर्मा ब्रह्मपुर राज्य में एक प्रभुत्व सम्पन्न राजा माने जाते थे। इन शिला-लेखों में राज्य का नाम ब्रह्मपुर दिया है। देवी की मूर्ति को देखते ही पता लग जाता है कि यह महिषमर्दनी की मूर्ति है। मूर्ति के नीजे भैंसे के रूप में महिषासुर है। देवी के हाथ में त्रिशूल है जिससे भैंसे के शरीर पर वार किया दिखाया गया है। देवी अपने प्रचण्ड रूप में परिलक्षित की गई है। पुराणों में महिषासुर के विषय में कहा गया है कि महिषासुर ने इतना प्रकोप मचाया कि शंकर और विष्णु भी आतंकित हुए। विष्णु और शंकर के क्रोध से लक्ष्मी प्रकट हुई जिसे महिषासुर के संहार हेतु विविध आयुधों से विभूषित किया गया। वही महिषासुर मर्दिनी है जिसने भंयकर राक्षस का संहार किया।

अन्य मूर्तियां (पूर्व वणित) गणेश और नन्दी की हैं। मनीमहेश के मन्दिर के सामने बैल के पूर्ण आकार का अष्ट धातु से निर्मित नन्दी खड़ा है। ऐसे लगता है कि तेरह सौ वर्ष से वह तपस्वी की तरह खड़ा अपने सवार शिवजी की उत्कट प्रतीक्षा में खड़ा है। न तो शिवजी आए होंगे और न ही उसने अपना स्थान छोड़ा होगा। कितने ही दर्शक मृत्यु के गाल में चल बसे परन्तु नन्दी अपना अस्तित्व लिए खड़ा है। केवल पूंछ दो टूक हुई है और जिसम से उसी प्रकार चिपटी है। जन श्रुति कि नन्दी का मुंह मनीमहेश मन्दिर की उल्टी दिशा की ओर था। शिवजी की ओर पूंछ किए खड़ा था। शिवजी क्रोध में आए और उसे पूंछ से पकड़ सीधा किया अतः पूंछ दो टूक हो गई।

श्रद्धालु लोग कान के द्वारा सिक्के की चढ़तर चढ़ाते हैं। समय-समय पर पेट से सिक्के निकाले गए होंगे। ऐसा मूर्ति के पेट में लगे धातु के पैवन्दों से प्रतीत होता है।

सूरजमुखी मन्दिर भी मेरु वर्मा द्वारा बनाया बताया जाता है। सूरजमुखी मन्दिर एक चबूतरे के सिवाय कुछ नहीं। एक पत्थर का शिव लिंग है। छत के ऊपर टंगे (समय-समय पर) कपड़े पर सूर्यमुख का निशान है। चम्बा राजा सूर्यवंशी होने के नाते सभी झंडों पर राष्ट्रीय निशान की तरह इस निशान का प्रदर्शित करते थे। डाक-कार्ड पर भी सूर्य-मुख चिन्ह अंकित हुआ करता था। जब कभी राजा भरमौर दौरे पर जाते सर्व प्रथम उस मन्दिर की बन्दना करते थे।

एक अन्य नृसिंह मन्दिर है जो मेरु वर्मा के बाद दसवीं शताब्दी में बना था।

छतराढ़ी शक्तिदेवी का मन्दिर :–

छतराढ़ी मन्दिर चम्बा नगर से चालीस पंतालीस कि०मी० की दूरी पर है। लूणा (चम्बा से ३८ कि०मी० दूर) तक बस में जाना पड़ता है, शेष मार्ग पहाड़ की चढ़ाई पर है। इस मन्दिर का निर्माण भी मेरु वर्मा के समय हुआ। मन्दिर के विषय में कहावत है कि यह लकड़ी का मन्दिर अपनी धुरी पर घूमा करता था। इस समय ऐसी व्यवस्था परिलक्षित नहीं होती। १६०५ ई० के भूँचाल में इसे क्षति पहुंची थी। शायद उस समय तक कोई व्यवस्था हो या सम्भव है गर्भ गृह इस प्रकार का हो और अपनी धुरी पर घूमता हो। चाहे कुछ हो, मन्दिर वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मन्दिर में लगी लकड़ी पर एक-एक स्तम्भ और प्रवेश द्वार पर चित्रकारी हुई है। विष्णु, ब्रह्मा, शिव, कार्तकेय, गणेश, नव ग्रह, गंगा, यमुना, सरस्वती, गन्धर्व, यक्ष इत्यादि देवताओं और असुरों की मूर्तियां लकड़ी पर खोदी गई हैं। गर्भगृह पर भित्तिचित्र अठाहरवीं शताब्दी के हैं। गर्भगृह में मानवाकार अष्ठधातु की मूर्ति है। इसे भी मूर्तिकार ने आभूषणों और वस्त्रों से सुसज्जित किया है। मूर्ति के नीचे एक कमल पर इसे खड़ा किया गया है। इसे कंधे से पांव तक धोती पहने दिखाया है। कंधे पर दुपट्टे नुमा कपड़ा (*Scarf*) दिखाया है। कानों में कुंडल, बांहों में चूड़ियां, गले में मोतियों का हार और पांव में घुँघरु स्पष्ट दिखाई देते हैं। सिर पर मुकुट पहना है। चार हाथ हैं। दो दहनें हाथों में दण्ड और कमल का फूल लिए हैं। दण्ड शक्ति को द्योतक है जबकि कमल जीवन का प्रतीक माना गया है। बाएं हाथ में शंख और सर्प हैं। शंख आकाश या अंतरिक्ष का प्रतीक है जबकि सर्प मृत्यु और काल का प्रतीक है।

देवी (मूर्ति) के नीचे, कमल के निचले भाग पर ब्राह्मी लिपी में अपभ्रंश में शिलालेख की पंक्तियां हैं जिनका अशुद्ध और शुद्ध रूप का विवरण *Hutchison* ने अपनी पुस्तक *Antiquities of Chamba* में इस प्रकार लिखा है :—

शुद्ध रूप इस प्रकार है :—

ओम् ॥ आसीद्धि शुद्ध कुलधुर्यवाहः श्री देववर्मेति प्रसिद्ध कीर्ति।
तस्य सुतः सर्वगुणाभिरामः श्री मेरु वर्मा प्रथित (यशाः) पृथिव्याम् ॥
माता पिता पुणयानि भित्तं पुर्वं करिता भक्ति एव शक्तिः।
जित्वा रिपून्बुर्जय दुर्गं संस्थांकीर्ति यशोधर्म विर्वाधितत्युः ॥
कृतं कर्मिणा गुग्गेन।

अशुद्ध रूप भी दिया है जिसे यहां देने की आवश्यकता नहीं। उपरोक्त पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार किया है :—

उच्च वंश में पैदा हुए प्रसिद्ध योद्धा देव वर्मा के पुत्र मेरु वर्मा ने, जो इस भू पर कीर्तीमान और सर्व गुण सम्पन्न हैं, अपने माता-पिता की अध्यात्मक समृद्धि और भक्ति से प्रेरित हो, दुर्जय, शत्रुओं के दुर्गम किलों को विजित कर, शक्ति की मूर्ति को निर्मित कर, प्रसिद्धि और धार्मिक गुणों से जीवन को सफल किया है।

कर्मकार गुग्गा (मूल अथ अंग्रेजी से)

इस से स्पष्ट होता है कि मेरु वर्मा ने छतराढ़ी के आसपास के राणाओं के किलों को विजित किया। इससे यह भी पता लगता है कि उसके समय का एक प्रसिद्ध मूर्तिकार था जिसने तीन भरमौर की और एक छतराढ़ी की अष्टधातु की मूर्तियों का निर्माण किया। परन्तु छतराढ़ी में जनश्रुति है कि गुग्गा मूर्तिकार नहीं था। वह भवन निर्माण की कला में सिद्धहस्त था। कहते हैं उसने किसी राणा का महल बनाया। राणा ने उस के दहिने बाजु को काट दिया ताकि उसका महल अद्वितीय रहे। फिर उसने छतराढ़ी का मन्दिर बनाया और स्वयं छत से छलांग देकर मर गया। दूसरी ओर स्थानीय रिहाड़ों का कथन है कि मूर्ति उन के पूर्वजों द्वारा निर्मित है। उसका नाम वे भड़िया बताते हैं परन्तु चारों मूर्तियों पर दिये नाम से निर्विवाद है कि गुग्गा ही मूर्तिकार था। साथ-साथ शायद वह वास्तुकला में भी सिद्धहस्त हो और भवन और मूर्ति निर्माण उसी ने किया हो। यह भी हो सकता है कि उसे ही भड़िया कहते हों। भड़िया ने अपनी एक मात्र पुत्री को मॉडल (*Model*) रख कर मूर्ति का निर्माण किया था ऐसा भी लोक विश्वास होता है।

यहां हर वर्ष मनीमहेष की यात्रा के दूसरे दिन से लगातार तीन दिन मेला होता है।

गूं (शिवपुरी) की मूर्तियां और मन्दिर :-

चम्बा से छब्बीस कि०मी० की दूरी बस से तय करने पर एक छोटे पुल को लांघ कर, रावी नदी के दायीं ओर गूँ का क्षेत्र पड़ता है। २ मील सीधी चढ़ाई चढ़ने पर 'गूँ' विशेष पड़ता है। इसी स्थान का पुराना नाम शिवपुरी था। सामन्त आषाढ़ देव ने मेरुवर्मा के समय यहां शिव का मन्दिर निर्मित किया था तथा एक सौ एक लिंग स्थापित किये थे जिनमें दस-पंद्रह अब भी हैं। शिव का मन्दिर ढय चुका है। एक शक्ति देवी का मन्दिर है। शिव लिंग का निचला भाग भी गिर चुका है जिस पर ब्राह्मी लिपि में एक शिला लेख है जिसका शुद्ध रूप इस प्रकार दिया है :—

ओम् ॥ मोषण दित्य वंश (संभूत) परम शिवनत श्री मेरुवर्म देव—पाद कमल किसलया-श्रितेन सामन्त अषाढ़ देवेन सुर पितृजन सेवा प्रसादात् कृतोऽयं देव धर्मः शिव पुरमध्यगं षङ्गलीशस्य हर्म्यम्।

संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है :—

सामन्त आषाढ़ देव ने, शिव भक्त, मूशन और सूर्य वंशी मेरुवर्मा के चरण कमलों को नत हो, शिवपुरी में शङ्गलीष के मन्दिर को निर्मित कर अपने पित्रों और सुरों की सेवा की है।

इन पंक्तियों से सामन्त आषाढ़ देव का पता लगता है जो मेरु वर्मा के अधीन थे तथा शिवपुरी (वर्तमान गूं) के संस्थापक थे। शिव मन्दिर ध्वस्त हो चुका है परन्तु शिव की पाशुपति सम्प्रदाय सम्बन्धी मूर्ति अवश्य है। शिव जी को एक शेरनुमा पशु और एक घोड़े पर बैठे पाया गया है। शायद यही साङ्गलीश हों। अन्य उस समय की सूर्य मूर्ति है जिसके विषय में ***Dr. Harman Goetz*** ने अपनी पुस्तक ***Early Wooden Temples of Chamba*** में यूं लिखा है :—

"......The most important of these are the Budha from Fatehpur and the above mentioned Surya image from Gun in the Ravi Valley, half way between Chamba and Bharmour. The Gun image, though in Gupta Style and technique, has Sasanian Costume and locks."

इतिहास के अनुसार ***Sassanian Dynasty*** ईरान ***(Persia)*** में २१८ ई० से ६३६ ई० तक रही है। अनुमान है यह सूर्य मूर्ति भी उसी समय निर्मित हुई हो। सूर्य मूर्ति सात घोड़े पर सवार है जिसका संचालन अरुण कर रहे हैं। उषा और प्रत्युषा दोनों ओर खड़ी हैं।

मेरु वर्मा के राज्य के विस्तार के प्रमाण इस ओर यहीं तक मिले हैं।

अमरसिंह रणपतिया,
मु० अध्यापक रा०उ० विद्यालय चन्हौता,
जिला चम्बा (हि०प्र०)।

—:oo:—

ताना म्हास्ते—महासू में सती प्रथा की एक गाथा

—सलीम

इतिहास राजस्थान की वीरांगनाओं के बलिदान का साक्षी है। जब जब भी राजपूत नारियों पर कोई विपत्ति पड़ी अर्थात् उनके पति जीवित न रहे तो उन्होंने निस्संकोच अपने शरीर को अग्नि की लपटों में विलीन कर लिया। राजस्थान की इस प्रथा को सतिप्रथा या जौहर की प्रथा कहा जाता था। परन्तु राजस्थान से महासु (शिमला का ऊपरी भाग) तक सैंकड़ों मीलों की दूरी, भाषाई असमानता, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विभिन्नता होते हुए भी 'सतिप्रथा' की समानता का कारण जानना अभी तक भी स्वयं में एक प्रश्नसूचक है। इस क्षेत्र की पूर्व प्रचलित लोक-गाथाओं में सति प्रथा के उदाहरण मिलते हैं। सति प्रथा के लिए इस क्षेत्र में इसे 'म्हास्ती' 'म्हास्ते' (महासति) संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध लोक-गाथा **'ताना म्हास्ते'** आपकी सेवा में प्रस्तुत है। यह गाथा (भारथ) आज से लगभग ड़ेढ़ दो सौ वर्ष के मध्य की एक सत्य घटना है। इस गाथा के पात्र और घटनाएं शिमला जिला की तहसील चौपाल के लगभग दोनों ओर के दस से बीस मील के भीतर की घटनाएं हैं। प्राचीन काल से चला आ रहा यह भारथ (गाथा) आज भी किसी वृद्ध आयु कवि की जबानी सुना जा सकता है।

घौरौ दे झांऊं ठुंडू रै बाल़ै कौनया जाए,
भाटै तौबै पोंड़तै राशे छाड़े खोजणे लाए।
राशे लाएऔ खोजणे आजौ खोंटिऐ खोटे,
बारौ हौले बौशौरे जाऔ हारूला होटे।

झांऊ नामक ठुंडू (तहसील चौपाल के हामल़ परगना के मुख्यता राजपूतों को ठुंडू कहते हैं) के घर में एक सुन्दर बालिका का जन्म हुआ। ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियों को राशि तथा ग्रह और भाग्य देखने के लिए बुलाया गया। ज्योतिषियों ने तरह-तरह से गणना की परन्तु बालिका की राशि खोटी ही आती थी। अन्त में उन्होंने घोषणा कर ही दी कि बारह वर्ष की आयु में यह कन्या किसी का वरण कर लेगी अर्थात् (हर) भाग जाएगी।

बाप झांऊं सींयों चोल़्टू पल़ाऐ लौखीऐ बुहागै,
उबो कौरौ एसी धीटु जीऔलो आपणै भागै।
बौरशै जाणी छमासिऐ उखड़े । सुरमे बोड़े,
पुल़ा आणौ खोड़ौरा आणौ पाणी रे घोड़े।

पिता 'झांऊं' कन्या के लिए (चौल़्टु) पहनने के कपड़े सीता और माता 'लौखी' धागे (पल़ोऐ) बाट रही थी। दोनों पति पत्नी में यही तय हुआ कि इस (धीटु) कन्या को उठा लिया जाए

अर्थात् पाल ही लिया जाए। जैसा इसका भाग्य होगा उसी के अनुसार जी लेगी। (यहां पर यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि लगभग अठारहवीं सदी तक भी पहाड़ों में कन्या का जन्म निरर्थक माना जाता था। ऐसी अनेकों घटनाएं सुनने को मिलती हैं कि कन्या को पैदा होते ही ज़िन्दा ही जमीन में गाड़ दिया जाता था, फैंक दिया जाता था या उनके मुंह पर (रोज) *Plecent* रख कर दम घोट कर मार दिया जाता था।) इसी प्रकार वर्ष और छमासी के अन्तर में 'सुरमी' नामक वह कन्या बढ़ती गई, इतनी तेज़ी से बड़ी होती गई कि अब वह घास का 'पुला' उठा लाती और पानी का घड़ा भी लेकर आती। अर्थात ८–१० वर्ष की वय में ही वह कन्या माता पिता की दृष्टि में विवाह योग्य हो गई थी।

'जोगें' देवा सौरकली रा तौबं बिशट्ु आजा,
म्हीनै बशाओ रै तौबै शादी रा सिहागटा लागा।
बीशु लागो सरांहै री पाऊणै पौडं जोड़णं रं दैबं,
बांठणी ड़ांड़ो सुरमी बादं, दैखदंई रौऐ।

उन्हीं दिनों सरकली (चौपाल के हामल परगना में) निवासी देवा (जाति) जोगी नामक कन्या को (बिशट्ु) वरण करने की इच्छा लेकर आया। बातचीत तय हुई और बैसाख महीने के आरम्भ में ही विवाह भी हो गया। उसी दौरान नौ बैसाख को अब तक लगने वाला सरांह का मेला लगा और बाहल परगने के जोड़ना ग्राम के देवे भी मेले में आए हुए थे। सब के सब सुरमी सुन्दरता देख कर अवाक् रह गए।

रीशौ रा ठौणका तौबै जोगी दा गोआ औ आए,
शौकड़ो भौरी गौहणे सुरमिऐ बीशु री जुबड़ी दो पाए।
बीशु री डेअओ जुबड़ी दु आजे न फीरयौ घौरं,
जोगी तैनै देवं मांडौ दिता फैंसला कौरे।

मनचले युवकों की हरकतें देख कर जोगी को (रीश) ईर्ष्या का (ठौणका) बुखार आ गया। नवविवाहिता के साथ तू तू मैं मैं हो गई और ताब खा कर सुरमी ने (शौकड़ो) टोकरा भर कर गहने (वजन में) उतार कर मेले के मैदान में फैंक दिए और फिर अपने पिता के घर वहीं से ऐसी गई कि दोबारा लौट कर नहीं आई। अन्त में मजबूर होकर जोगी को उसको तलाक देना ही पड़ा।

चौता मजाइक बाकरी चारौ सुरमे बगाहरे दी गाओ,
केथे थिए शाडरें केथओ तू रौए छांदयौ आए।
चारौ हांड़े पून्दरी चारौ छोड़े हांड़यौ बराड़ौ,
तानै जोगे छंउड़े केथी भेटे न चौतरा नारौ।

माइके वाले गांव में चौता नामक व्यक्ति बकरियां चराया करता था और सुरमी बगाहर नामक स्थान में गाए चराने जाया करती थी। चौता उसे पूछता है तुम्हारा विवाह कहां था

और तुम कहां से छंट कर आई हो। हमारे पास एक ताना नामक जवान है उसने चारों पुन्दर और चारों बराड़ (जुब्बल) चल कर देख लिए हैं परन्तु उसके योग्य कहीं भी चतुर (नार) पत्नी अभी तक नहीं मिल सकी है।

हाथं किया ताने ड़िंगटा कान्है घोरूग्रा लेवा,
भीनै रा छिटका तौबं ठुंडू री बगाहरे डेवा।
ग्रागु बोशा ग्रांगणी पाछु घोरो री भीतै,
येग्रो सुणो थियो बौणजौ तुम्रों लागदो बी चींते।

जब इस सुन्दरी के बारे में चौपाल के झीना ग्राम निवासी ताना ने सुना तो वह भी हाथ में अपनी लाठी और कन्धे पर पट्टू लेकर झीने से चलकर ठुंडुओं के गांव बगाहर पहुंचा। झांऊ के घर पहूंच कर आंगन में दीवार से पीठ लगाकर वैठ गया और पूछे जाने पर कहने लगा कि मैं (बौणिज) बाणिज्य की वस्तु अर्थात कन्या का हाथ मांगने के लिए आया हूं।

पीठे लेग्रो पलीटवौ तौबं सूरमिऐ हौसे,
ढ़ौबो नी हौलो बौणजौ जोरै देणो नी कौसे।
भनाणे ग्रो ठुंडू रेग्रो बोइरो पराणे,
मीतरी तौबं लाणं खै रुपौइयै चौबीस बी ग्रो ग्राणं।

पीठ फेर कर सुरमी हंस रही थी। माता पिता ने कहा कि यदि तुम्हें वर पसन्द नहीं है तो जबरदस्ती हम किसी को नहीं सौंपेंगे। झीना वासी और ठुंडूओं की प्राचीन अनबन (वैर) शत्रुता है। क्या तुमने (मीतरी) रिश्ता करने के लिए दण्ड स्वरूप देने के लिए चौबीस रुपया भी लाया है?

भूशो लाग्रो ताना भनाणटा बातो तोलगी ग्रो तोलो,
चौबीश रपौइये का मैरं चौऊ गाबटू रो मोलो।
मुलं री तौबं मुलाइऐ पौरै केरे पौ मुलाए,
नो नाली हामलो गोई भीनै खै जाजडू पौ ग्राए।

ताना झनाणटा बातचीत में तेज तरार था, कहने लगा कि चौबीस रुपये की क्या बात है मेरे चार मेमने (गाबटू) की कीमत है। दण्ड के रूप में चांदी के रुपये गिने गए और विवाह तय हुआ जिसके फल स्वरूप नौ नालियों के मध्य रहने वाले अनगिनत हामल निवासी (जाजडू) बारात में कन्या के साथ झीना ग्राम के लिए चल पड़े।

मुछे खलाणो दे कोणको थिया तानै रा जिग्रो,
बोरी बितो ठुंडू धांबिऐ टोकणिऐ पौ धिग्रो।
सुरमे थिए घोरै ताना टीरो वा भंड़ी तौबं ग्रागे।
शागु लिखे शांखणों रान्ड़ी सुरमी रै भागें।

बेशुमार महमानों के लिए आटा भी खलिहान में गूंथा गया। बैरी ठुंडुओं को टोकणी द्वारा बहुत घी दिया गया अर्थात बहुत खर्च किया गया। इस प्रकार सुरमी घर में थी और ताना टीर में भेड़ों के पास था। दुर्भाग्य उस बेचारी का था जिसके भाग्य में निर्दयी सास लिखी थी।

ग्रोरी खै चाणी सिड़कू सुरमी खै जठीड़कू से रांढ़ो,
चीन जाए छोग्रटु तैनो पाछ़ं भुगतोग्रो मांड़ो।
ग्रौह रो बांदलो सुरमिऐ तौबै फिरवो लागो,
तानै तैसी झनाणटै ,पोरो चाइतौ से लागो।

सास औरों के लिए (सिड़कू) गेहूं की रोटी बनाती और सुरमी के लिए (जठीड़कू) जौ की रोटियां बनाती। तीन बच्चे पैदा हो गए थे उस बेचारी को उनके कारण सब कुछ सहन करना पड़ा। इससे भी अधिक ईश्वरीय कोप भाजन भी सुरमी को बनना पड़ा, ताना बीमार पड़ गया।

झ़ीनै रे जाणी देउलौ तोंई रहेटणा देवा।
जोड़ना ग्रौणों पूजयो तानै फाइदा नी होग्रा।
शाशु बोलौ सुरमी रे देखे म्हास्ते न जौल़,
भौरी गोंपो चा़ईतौ तानै री ग्राखटी गोई ढ़ौले।

झीनै की देऊल़ तथा रहेटणा देवता कई विधियों से पूजा गया तथा जोड़ने का देवता भी पूजा गया परन्तु ताना को कोई भी फायदा न हुआ। सुरमी की सास उसे व्यंग कसती है कि कहीं मेरे पुत्र के मरने के बाद तुम कहीं सती न हो जाना। ताना ने बहुत तकलीफ (बीमारी) बर्दाश्त की परन्तु अन्त में बेचारा चल ही बसा।

तानै री जल़ाईतौ पोरे गोए ठुंड़णै खै जाए,
हीठौ गोए मीतरौ बादै ग्रोरै झीनै खै जाए।
झांऊं तौबै लौखें रूग्रग्रौ चुणौ ले पौलु,
सुरमे बोलौ ग्रामे बापु खै ग्रांह्, म्हास्ते जौल़्।

ताना की मौत की खबर ठुंड़णा ग्राम को भेजी गई, सभी सम्बन्धी झीना में आ गए। सुरमी के माता पिता झांऊं और लौखा रो-रो कर अपने सफेद बाल (चुन) नोच रहे थे। सुरमी उन्हें कह रही थी कि मैं सति होना चाहती हूं।

गायणौ बोदै सुरमिऐ तौबै इएकी ग्राशु न रूणै,
तीग्रों म्हास्ती रे भारथा तौबै सौबिऐ शुणे।
माग्रौ री छ़ियाल़ वे चीनौ छ़ोग्रटु तौबै पाए,
मौड़ै रै पाणिऐ गोइये तौबै सुरमिऐ न्हांए।

सुरमी ने (गायण) आशु कवि और गायक बुलाए और स्वयं एक आंसु भी न रोई। उस महासति की गाथा फिर सब ने सुनी। अपनी माता की गोद में तीनों बच्चे डाल दिए और स्वयं मुर्दे के पानी से नहा गई।

मौड़ो कियो घियाल् दो गोये पालगी दे बोशे,
घीओ री बाटी दे तौबं ताने रे शौक्लो न दीशे ।
मांछ् छाड़ा जोगी बबे खं तंने बीते धागले रं जोड़े,
शौक्लो गोए तौबं ताने रे पोरे बारी दे पीड़ं ।

सुरमी ने मृत पति का शव अपनी गोद में ले लिया और स्वयं पालकी (मुर्दा ले जाने की) में बैठ गई । उसके पश्चात रिवाज के अनुसार घी की (बाटी) दिया जलाया गया और दिये के घी में सती होने वाली स्त्री को अपने पति की सूरत नजर आनी चाहिए तभी उसका सती होना सार्थक है । बाटी में सुरमी के पति 'ताने' की सूरत न पड़ी और फिर एक व्यक्ति को सरकली ग्राम स्थित सुरमी के प्रथम पति जोगी नामक देवे के पास भेजा गया । जोगी ने उत्तर में एक जोड़ी (धागलें) चांदी के कड़े भेजे । उन्हें पहनने के पश्चात दोबारा, सुरमी ने घी में देखा तो बाटी में उसे पति 'ताने' की सूरत स्पष्ट दिखाई दी ।

चा़ल पोडे मौड़यौ खं तौबं सुरमिऐ मौरदौ रं हीकं,
कीमू दे लाए तरारयं सौभी खं बौच़नौ दीतं ।
बादौ भौरियो झी़नो एनिए रांडिये राडं,
मेरी होले सरैखौ रे लाग्रौले कीमू री सीखरी दे खांड़े ।

उसके बाद पालकी में बैठ कर सुरमी मर्दों जैसे हृदय से मुर्दघाट की ओर चल पड़ी । रास्ते में शहतूत का पेड़ था उसकी चोटी पर तलवार का वार करके सभी लोगों को कहने लगी "तमाम झीना ग्राम विधवाओं से भरा पड़ा है । अगर कोई मेरे मुकाबले की होगी तो मेरी तरह (कीमू) शहतूत की चोटी पर तलवार का वार करे ।" अर्थात पति के साथ सति हो जाए । इस प्रकार उस वीरांगना ने पति के शव के साथ अपना भी अन्त कर दिया ।

—:००:—

कांगड़ा के मृत्यु–संस्कार

–डॉ० मनोहर लाल

सन्त कबीर ने चक्की चलती देखी और उन्हें लगा सारा संसार चक्की की तरह चल रहा है। जन्म तथा मृत्यु संसाररूपी चक्की के दो पाट हैं जिनमें हर प्राणी को पिसना पड़ता है।

चलती चाकी देख कर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबत बचा न कोय॥

निःसन्देह इस व्याधि-मंदिर शरीररूपी रोग का एक मात्र उपचार मृत्यु है। विचित्र विडम्बना है कि प्रत्येक प्राणी जीवन पर्यन्त इस मौत से डरता-बिदकता रहता है और बराबर यही प्रयास करता है कि मौत उससे दूर रहे और वह मौत से। वह यह नहीं सोच पाता कि कुंभकार ने जिस घट का निर्माण किया है उसे एक न एक दिन फूटना है, मिट्टी को अन्ततः मिट्टी में मिलना है। जिस जीवन का एकमात्र विकल्प है ही मृत्यु, उसके लिए आखिर शोक अथवा रुदन का क्या प्रयोजन! हमारे रोने-धोने से अगर मृतक लौट आता तो अब तक लौट कर आये तथा जिन्दा व्यक्तियों की भीड़ से यह धरती चादर की तरह ढक गई होती। जीवन और मृत्यु का विधान जिस नियंता के हाथ है उस पर लांच्छन या दोषारोपण करना मूर्खता नहीं तो और क्या है? गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' के प्रथम अध्याय में लिखा है— "अगर कोई मौत से भाग कर प्राण बचाना चाहे तो भला यह तो बताइये वह भागेगा किस दिशा में? वह जिधर भागेगा उधर ही काल तलवार लिए गर्जता मिलेगा और प्राणी बराबर बचाव के लिए भाग दौड़ करेगा। ऐसा न कोई विश्वास पूर्वक कह सकता है और न ही ऐसा कोई उपचार है जिसके फलस्वरूप काल-प्रहार से बचा जा सके। मूढ़ मानव जिस काल से किसी भी परिस्थिति में बच नहीं सकता, भला प्रसन्नतापूर्वक उसकी शरण में क्यों नहीं चला जाता।

जो कहुं काल ते भाज कै बचिग्रत तौ ग्रहि कुंट कहो भजि जइए।
ग्रागेहुं काल धरे ग्रसि गाजत छाजत है जिह ते नसि ग्रइए॥
ऐसो न कै गाये कोइ सु दाब रे जाहि उपाव सों घाव बचइए।
जा ते छूटहि मूढ़ कहूं हंसि ता की न क्यों सरनागति जइए॥

विचित्र नाटक : १-६६."

मौत की यह भयावनी अथवा कहिए निश्चित स्थिति विश्व भर में संस्कार बन गई है। प्रत्येक देश की जन-जातियों अथवा विभिन्न धर्मावलम्बियों के मृत्यु-संस्कार भी विचित्र तथा विभिन्न प्रकार के हैं। इन संस्कारों का अध्ययन प्रदेश विशेष के जन जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को स्पष्ट

करने में समर्थ हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर कांगड़ा के मृत्यु-संस्कारों का अध्ययन मेरा अभिप्रेत है।

मृतक बच्चे :

कांगड़ा के मृत्यु-संस्कारों के अन्तर्गत सर्व प्रथम बच्चों की चर्चा उल्लेखनीय है। कई बार बच्चे जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे मृतक बच्चे को गांव की कोई सयानी औरत पंचगैव (पंचगव्य) से नहला कर सफेद खद्दर में लपेट कर सू (प्रसव) सहित अन्तिम संस्कार के लिए तैयार कर लेती है। मर्द घर से थोड़ी दूर कहीं झाड़ियों में अथवा सूने खाली स्थान पर (जहां प्राय: लोगों का आना जाना नहीं होता) गहरा गत्त (गढ़ढा) खोद कर तैयार कर लेते हैं। मृतक बच्चे को इस गढ़्ढे में दबाने के लिए वही औरत ले आती है जिसने उसे कफनी में सहेजा होता है। मृतक को गढ़्ढे में डालने के बाद गांव के लोग दोनों हाथों से अंजलि भर कर मिट्टी शव पर डालते हैं। फिर खुदाई से निकली हुई मिट्टी से गढ़्ढा भर दिया जाता है। गढ़्ढे पर कांटेदार झाड़ियां रख कर, मोटे-मोटे पत्थर भी रख दिये जाते हैं ताकि जंगली जानवर खोद न सकें। बच्चे की मृत्यु के तीसरे दिन, जिस औरत के बच्चे होने बन्द हो गये हों, वह प्रसूना को नहला कर साफ सुथरे कपड़े पहनाती है। यदि मां का दूध पीने वाला बच्चा मर जाये तो उसकी मां, या गाय-भैंस का ताजा दूध निकाल कर, तीन, पांच या सात दिनों तक उस गत्त पर डाला जाता है। ऐसे बच्चों की मृत्यु का पांच या सातदिन तक 'पातक' मानते हैं। प्राय: चार या पांच साल के मृतक बच्चे का निजी सलूई (श्मशान घाट) पर दाह-संस्कार कर दिया जाता है। यदि मृतक कन्या हो तो दाह-संस्कार अपनी सलूई पर न करके कहीं अन्यत्र खड्ड आदि में करते हैं। इस आयु के बच्चे का क्रिया-कर्म न करके पांच, सात, ग्यारह दिन या एक माह बाद यथास्थिति औरत या मर्द को खाना खिला कर, कपड़े आदि पहनाये जाते हैं। लगभग पन्द्रह दिन तक सोग (शोक) माना जाता है। शोक प्रकट करने के लिए, यदि बच्चा लगभग छ: महीने का हो तो औरतें नाक का कोका (तीली) खोल लेती हैं। इससे बड़ी आयु वालों के लिए हाथ-कान (चूड़ियां तथा तीली) सब खोले जाते हैं। मृतक बच्चे के लिए खोले गये हाथ-कान दो या तीन सप्ताह के बाद पहनने की प्रथा है। हाथ-कान पहनाने के लिए कोई भी विवाहिता धी-धियाण (बेटी) अपने सुसराल से आ कर कहती है।

जब संचार से साधनों का प्रर्याप्त विकास नहीं था तब रिश्तेदारों के पास मृत्यु की सूचना ले जाने का काम नाई करता था। आज यह कार्य-कलाप पत्र द्वारा किया जाता है। फिर भी यदि कहीं आस-पास या थोड़ी दूर पर अनिवार्य रूप से मृत्यु सूचना अपेक्षित हो तो परिस्थिति के अनुसार नाई या कोई अन्य व्यक्ति भेजा जाता है। ऐसे संदेश को 'सनौणी' कहते हैं। आस-पड़ोस तथा रिश्तेदारों को मृतक के परिवार के शोक में शामिल होकर धैर्य आदि बंधाने के लिए जो दिन नियत हैं, उन्हें 'वार' पुकारा जाता है। ये हैं :— सोमवार, बुधवार, शुक्रवार तथा शनिवार। मृत्यु का दिन प्राय: पछणोका बार (आखिरी दिन) माना जाता है। यह सिद्धान्त सोमवार, बुधवार शुक्रवार तथा शनिवार पर लागू होता है। यदि मृत्यु-दिवस मंगलवार, वीरवार या रविवार हो तो पछणोका वार क्रमश: बुधवार, शुक्रवार तथा सोमवार माना जायेगा।

मृत्यु के क्षण :

कांगड़ा में जो व्यक्ति मृत्यु-शय्या पर हो तथा ऐसा लगे कि अब उसका जीवन शेष नहीं है, परिवार के प्रमुख लोग तथा आस-पड़ोस के ग्रामीण प्रायः उसकी खबर लेने (हाल पूछने) आते रहते हैं। अधिक हालत बिगड़ जाने पर उस व्यक्ति को अकेला नहीं छोड़ा जाता, बार-बार नाड़ी देख कर उसकी जीवनी-शक्ति का परिचय प्राप्त किया जाता है। जब ऐसा अनुभव होने लगे कि मरणासन्न व्यक्ति अब कुछ ही क्षण शेष है तब उसे ज़मीन पर चौका लगा कर कम्बल बिछा कर पुठे सराणे (उल्टी दिशा, सिर उत्तर तथा पांव दक्षिण की ओर) लिटा दिया जाता है। यह क्षण बड़े महत्व का होता है। बराबर यही प्रयास किया जाता है कि चारपाई पर मृत्यु न हो। चारपाई पर मृत्यु होने से प्रेतात्मा की गति न होना माना जाता है। ऐसा होने पर क्रिया-कर्म का कार्य-व्यापार 'नारायण बलि' के उद्देश्य से काफी विस्तार से कराना पड़ता है।

भूईयां (भूमि पर) उतारते ही मरणासन्न व्यक्ति से 'गोदान' कराया जाता है। 'गोदान' के बारे में लोक-विश्वास है कि वैतरणी पार करने के लिए गाय विशेष सहायक सिद्ध होती है। इसी समय मरणासन्न व्यक्ति के मुंह में गंगाजल, तुलसीदल तथा पंचरत्न (मूंगा, मोती, सोना, चांदी व तांबा के कण) डाले जाते हैं, इस सामग्री को 'विष्णु-चरण जल' की संज्ञा दी जाती है। प्राणांत होते ही शंख में सीधी फूंक देकर लम्बी 'घू' की आवाज़ कर दी जाती है, इससे आसपास चारों दिशाओं में शोक की लहर का सदेश पहुंच जाता है। मृतक के सिर के पास अन्न (दाने) तथा कुछ वर्तन डाल दिए जाते हैं। कमरे में मृतक के पास कौड़े (सरसों) तेल का दीपक जलाया जाता है। यदि मृतक नूहों (बहुओं) वाला हो तो वे तत्काल सलवारें बदल कर लहंगे, सफेद कमीज़ें तथा चादरें ओढ़ लेती हैं, और सिर के बाल खोल कर दहाड़ें मार कर रोना शुरु कर देती हैं। इसके बाद की लम्बी मृतक-संस्कार-प्रक्रिया को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में स्कूल के बालकों ने न जाने कब लोककवि बन कर घड़ मारा। स्कूली बालक अक्सर मृत्यु को यमपुरी की नियुन्दर (निमन्त्रण) के रूप में स्वीकार करते हुए कुछ गांवों के नामों से तुकबन्दी करके कहते हैं :—

पैली नियुंद बघमाणे, सेर दाणे सट्टणे सराणे।
दुई नियुंद भद्रकाली, अन्दर दिज्जा बलै, बाहर घड़ण नालीं।
त्रि नियूंद घाटिया, सेर जौआं वा भट्टा पाणा बाटिया।
चौथी नियूंब बड़ेट, मुड़दा उप्पर सीढ़ी हेठ।
छेमी नियूंद बलोटुएं, बजवें सखें, घुलवें गोटुएं।

उक्त पंक्तियों में दाह-संस्कार तक की सांस्कृतिक-प्रक्रिया का सांकेतिक विवेचन है।

दाह-संस्कार की प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए पूरा कार्य-व्यापार दो भागों में बंट जाता है—अन्दर और बाहर। 'अन्दर' से तात्पर्य है जिस कमरे में मुर्दा पड़ा है। यदि मृतक स्त्री हो तो स्त्रियां और यदि पुरुष हो तो अन्दर का सारा काम पुरुष करते हैं। बाहर के कामों में प्रमुख हैं नाई तथा पुरोहित की सनौणी, बाजार से कफन, (यदि घर में न हो तो) ठीकरा, कुज्जु, दीपक, घियारी, चुआरू, खीलें, सरसों का तेल आदि सामग्री लाना, सिढ़ी (अर्थी) के लिए नालें (बांस की

जाति का पेड़) लाना, लकड़ी काटना तथा अर्थी तैयार करना। अन्दर के कामों में, प्राणांत होते ही मृतक के कपड़े खोलना या फाड़ देना, पंचगव्य से स्नान कराना तथा मुर्दा पुंग (खद्दर की थैली जिसमें मुर्दा लपेटा जाता है) में डाल कर कच्चे धागों से बांधना।

मृतक स्त्री :

मृतक औरत को पूरे कपड़े पहनाये जाते हैं। यदि वह सुहागिन हो तो उसके सोलह श्रृंगार कर दिए जाते हैं। इस अवसर पर स्त्री हो या पुरुष, प्राय: कीमती आभूषण उतार लिए जाते हैं। कई बार लारथियों (सद्य प्रसूता) की मृत्यु हो जाती है। ऐसी मृत्यु बगियाम (अशुभ) मानी जाती है। लोक-विश्वास है कि ऐसी औरतों का नवजात शिशु शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। लोक-मान्यता के अनुसार मृतक मां की प्रेतात्मा रात को स्त्री रूप में बच्चे के लिए घर के आस-पास पुकार लगाती रहती है—'हाय बचड़िया, हाय ! बचड़िया !' प्रसूता की प्रेतात्मा बच्चे को प्राप्त करने का प्रयास न करे इसलिए कुछ टूणे किये जाते हैं —यथा प्रसूता के पैरों को रस्सी से बांध कर मोटी सूई से सी देना। होंठों को सीना (ताकि बोल न सके), आंखों को सीना (ताकि देख न सके) कान को सीना (सुन न सके), हाथ बांध कर सीना (हाथ न फैला सके) इत्यादि।

श्मशान घाट की तैयारी :

जब मुर्दा पुंग में लपेट दिया जाता है तब सिढ़ी पर खद्दर बिछा कर गंगाजल, पंचगव्य (तुलसी तथा कुशा डाल कर) तैयारी की जाती है। एक आदमी परौली के पास से हाथ में गोबर लेकर आंगन में सिढ़ी तक एक लकीर खींच कर ले जाता है और बचे हुए गोबर को आगे की ओर फैंक देता है। इस लकीर पर सिढ़ी रख दी जाती है। नाई पिंडदान करने वाले का भदरा (मुंडन संस्कार) कर देता है। पुरोहित जौ के आटे का पहला पिंड पुत्र से सिर से स्पर्श करा कर दिलाता है। एक आदमी भीतर वाले दीपक से, दूसरा, आकार में बड़ा दीपक तेल से भर कर, मृतक के सिर से स्पर्श करता हुआ जला कर अन्यत्र उचित स्थान पर चौका डाल कर रख देता है। इस दीपक को ठीकरे के नीचे, ठीकरे को छोटा सा सुराख करके ढक दिया जाता है। बराबर ध्यान रखा जाता है कि यह दीपक बुझे नहीं। शंखनाद के साथ तीन आदमी मृतक को सिर, कमर तथा पांवों के पास से पकड़ कर देहली (डुआठण) तक लाते हैं। देहली पर पुन: पुरोहित एक पिंड दिलवाता है। तत्काल मुर्दा सिढ़ी पर रख दिया जाता है। यहां भी पुरोहित एक पिंड दिलाता है। मुर्दे को सिढ़ी पर रखते ही ज़ोर से लम्बी आवाज़ का शंखनाद किया जाता है। इतना सब होते-होते गांव तथा घर की औरतें तथा अन्य लोग रोने लगते हैं। बूढ़ी औरत के लिए हाय ! माया, बूढ़े पुरुष के लिए हाय ! बाबला, नवयुवती के लिए हाय डीठड़िए ! तथा नवयुवक के लिए हाय डिठड़िआ ! सम्बोधन से करुणारुदन किया जाता है। इसके बाद कफन डाल कर बगड़ (एक प्रकार की केशनुमा घास) की रस्सी से मुर्दा बांध दिया जाता है। तब गांव की सारी औरतें अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार कफन के रूप में कपड़े का एक-एक छोटा सा टुकड़ा तथा कुछ पैसे हाथ में लेकर मृतक के पैरों पर चढ़ा कर मत्था टेकते हुए बाईं से दाईं की ओर एक फेरी लेती हुई (परिक्रमा करते हुए) अपनी छातियां पीट-पीट कर 'स्यापा' करने लगती हैं। बिखरे हुए बालों वाली सफेद पोशाक में करुण रुदन करके धाड़-धाड़ छाती पीटने का दृश्य बड़ा हृदयविदारक होता है, उस समय वहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति के नेत्र

अश्रुपूरित होते हैं। ये क्षण बड़ी तेजी के होते हैं। इतना कार्य सम्पन्न होते ही जिन व्यक्तियों ने मृतक को अन्दर से सिर तथा पैरों से उठा कर बाहर लाया होता है, भाई बन्धुओं की सहायता से अपने सिरों पर कम्बल या चादरें रख कर सिढ़ी को उठा कर श्मशान की ओर चल देते हैं। शंखनाद बार-बार दोहराया जाता है। अर्थी के साथ मृतक का, यदि पोता हो तो, चौरी (चवरी) झुलाता चलता है। एक आदमी खीलें, फुलियां तथा फूल फैंकता जाता है और एक थोड़ी-थोड़ी दूरी पर शंखनाद करने लगता है। मुर्दा ले जाने के बाद सारी औरतें उस स्थान पर इकट्ठी हो जाती हैं जहां आंगन में अर्थी रखी हुई थी। वहां छातियां पीट कर स्यापा करके भीतर कमरे में मृत्यु-स्थान पर इकट्ठी होकर स्यापा करती हैं। फिर उस घर की एक औरत बुहार देकर गोबर फेरती है किन्तु इस काम को करते समय मौन रहती है। कूड़ा तथा गोबर आंगन के किनारे एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है। (यही औरत दस दिन तक बुहार देती है तथा कूड़ा एक स्थान पर इकट्ठा करती रहती है।) बुहार गोबर के बाद सारी औरतें खूह (कूएं) पर जाकर नहाती, सिर तथा कपड़े धोकर पानी की गागरें भर कर घर वापिस आ जाती हैं। इसके बाद दस दिन तक न कपड़े धोए जाते हैं न लीपा-पोती होती है। श्मशान पर दाह-संस्कार करने के लिए जाने वाले सारे व्यक्ति (औरतें श्मशान पर नहीं जाती, वे घर पर ही फेंरी लेने के बाद अर्थी पर लकड़ी (तुलसी की टहनियां) डाल देती हैं।) नंगे पांव जाते हैं। यदि सारे व्यक्ति भौगोलिक परिस्थितियों के कारण नंगे पांव न जा पाएं तो अर्थी उठाने वाले तथा पिंड दान करने वाला व्यक्ति नंगे पांव जाता है। मुर्दा उठाते समय मुर्दे का सिर आगे (जैसे वह घर की ओर देख रहा हो) किया जाता है। जो दो आदमी एक बार मुर्दा उठा लेते हैं, वही श्मशान तक ले जाते हैं। घर से श्मशान तक की आधी दूरी तय करने के बाद अर्थी को ज़मीन पर शंखनाद के साथ रख दिया जाता है। इसे अर्द्धमार्ग कहते हैं। यहां पुनः मुर्दे पर पंचगव्य छिड़क कर पिंड तथा गोदान का विधान है। यहीं समीपस्थ कुएं या बावली (जो भी उपलब्ध हो) से एक मटकी पानी भर कर मुर्दे के सिराहने डाल कर मटकी फोड़ दी जाती है (कहीं-कहीं यह प्रथा समाप्त है।) मृतक के गोत्रज वसूटी (एक पौधा) के दो दो पत्ते तथा एक-एक गिट्टी (साबुत छोटा सा पत्थर) मुर्दे के सिर से स्पर्श करके समीप वाले पेड़ से सटा कर रख देते हैं। इस प्रक्रिया का नाम पन्नारी (पनिहारी) है। पुनः मुर्दे को उठाया जाता है। इस समय सिर की ओर लगा हुआ व्यक्ति पैरों की ओर तथा पैरों की ओर लगा हुआ सिर की ओर से मुर्दे को सिर पर उठाता है। इस प्रकार पुनः शवयात्रा शुरू हो जाती है। पीछे चलने वाले व्यक्ति 'रामनाम सत्य है' बोलते जाते हैं।

शव के श्मशान भूमि पर पहुंचते-पहुंचते चिता के लिए लकड़ी पहुंच चुकी होती हैं। जमीन पर पंचगव्य छिड़क कर सल् (चिता) चिणने के जानकार सल् चिन देते हैं। सल् का सिरहाना उत्तर की ओर तथा पौंदी (पैर) दक्षिण की ओर किये जाते हैं। सल् के तैयार होने पर पुरोहित पुनः पिंड-दान करवाता है। जो व्यक्ति शव को उठा कर लाये होते हैं, वे ही सिढ़ी को उठा कर सल् पर सटा कर डाटी (दरांती) से सिढ़ी की रस्सियां काट कर मुर्दे को सल् पर सीधा लिटाते हैं। नाल की सिढ़ी को हाथों पर ऊंचा उठा कर अपने सिर के ऊपर से ले जाते हुए नीचे जमीन सल् की दाईं ओर फेंक देते हैं। अब शव का मुंह नंगा करके उसमें गुड़, घी तथा चन्दन डाल कर परिवार के सदस्य अन्तिम दर्शन करते हैं। इस समय भी मृतक के बेटे

आदि ढाह मार कर रोते हैं। अन्तिम दर्शन के बाद शव का मुंह ढक दिया जाता है। लकड़ी डालने आये हुए शेष लोग आमल (आंबला), बिल (विल्व), चरनाठी (चन्दन-लाठी, चन्दन की लकड़ी) तथा तुलसी की लकड़ी शव पर डालते हैं। लकड़ी डालते समय ध्यान रखा जाता है कि उक्त लकड़ियों के ढक (मूल, शुरु का हिस्सा) शव के सिरहाने की ओर और आगे का हिस्सा पैरों की तरफ रहे। लकड़ी डालने का काम सम्पन्न होने के बाद शव के वक्ष पर मोटी भारी सी लकड़ी की ठेली रख कर सिढ़ी की एक बाही (लम्बा डंडा) तथा शेष लकड़ियां डाल दी जाती हैं। जो बाही चिता पर नहीं डाली जाती उसके आगे से थोड़ी सी लकड़ी काट कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके सम्भाल लिये जाते हैं। सिढ़ी की लकड़ी पर विशेष नज़र रखी जाती है, क्योंकि ऐसे मौके पर इसी लकड़ी से कई लोग जादू-टोना कर देते हैं। इस लिए प्रयास किया जाता है कि एक बाही के अतिरिक्त सिढ़ी की एक भी लकड़ी बचने न पाये, सारी चिता में रख दी जायें। इसके बाद जो आदमी घर से घियारी [मिट्टी का वर्तन जिस में गोटुओं (उपले) की आग डाल कर घर से चिता को लगाने के लिए लाते हैं; यह कुज्जू नाल की लकड़ी की (हत्थी) चिमटा सा बना कर बांधी हुई होती है इसमें से बराबर धूँआं निकलता रहता है] लाया होता है, वह सल् के सिरहाने मोटा सा पत्थर रख कर फोड़ देता है। चिता से सटी हुई सोक (सूखी घास) आग पकड़ लेती है। मृतक के परिवार के लगभग सारे सदस्य अपने हाथ में सोक लेकर, सिरहाने से पौंदी की ओर लगाते हुऐ आगे निकल जाते हैं, इसे 'लाम्बूआ देणा' कहते हैं। थोड़ी देर के बाद जब मृतक का सिर पूरी तरह जल जाता है तब पुरोहित कपाल-क्रिया करवाता है। जिस व्यक्ति ने पिंड दिये हों, वह सिढ़ी की बाही के अग्रभाग से तीन बार मृतक के जलते हुए सिर को तीन उज्जें (धक्के) देता है। सिर की हड्डियां फूट कर बिखर जाती हैं। कपाल-क्रिया अनिवार्य मानी गई है। कपाल-क्रिया के बिना यह सन्देह बना रहता है कि कोई तांत्रिक मृतक की साबुत खोपड़ी को न ले जाये। कपाल-क्रिया के बाद पुत्र या पिंड देने वाला सल् पर पंचगव्य छिड़क कर सिढ़ी की बाही से काटी हुई सात लकड़ियां तथा सात गिट्टियां हाथों में लेता है। फिर चिता की ओर मुंह करके एक-एक मिट्टी सल् पर फैंक देता है। इस प्रक्रिया को 'बाण' कहते हैं। वह चिता को अन्तिम प्रणाम करके पीछे हट जाता है। जितने लोग दाह-संस्कार में सम्मिलित होने आये होते हैं, सब सल् के सिर की ओर मुंह करके खड़े होकर मुंह पर कपड़ा लेते हुए तीन बार 'ओं' उच्चारण करते हैं। यही सल् को अन्तिम प्रणाम है। दाह-संस्कार के बाद सारे व्यक्ति स्नान करके तन पर के सारे कपड़े धो लेते हैं। स्नान करके तिल हाथ में लेकर, अंजलि में जल लेकर (यज्ञोपवीतधारी यज्ञोपवीत को असभ्य करके) मृतक का नाम या सम्बन्ध उच्चारण करके (यथा ताया, ताई आदि) तिलांजलि अर्पित करने के बाद भीगे हुए कपड़ों में ही घर की राह लेते हैं। दाह-संस्कार को गये हुए प्राय: सभी आदमी मृतक के घर पहुंच कर थोड़ी देर बैठते हैं। लौटते समय रास्ते में से पलाश का छोटा सा खुंड (लकड़ी) काट लाते हैं। पलाश का यह खुंड मृतक के घर के एक कोने में गाड दिया जाता है। कुम्हारों से लाये हुए एक कोरे कुज्जू में, नीचे छोटा सा छेद किया जाता है। उसमें कुशा की तीन पत्तियों की बत्ती बना कर आर-पार करके भीतर तथा बाहर गांठें लगा दी जाती हैं। फिर उनमें कच्चे सूत के तीन तंद (तंतु) तथा थोड़ा सा गोलू (सफेद चिकनी मिट्टी) डाला जाता है। इस कुज्जु को बगड़ (घास विशेष) के बिन्ने पर टिका कर तीन लड़ियों की रस्सी से बांध कर, इसमें पंचगव्य तथा दुलस्सी डाल कर पलाश के खुंड पर लटकाया जाता है। कुज्जु में से एक-एक बूंद पानी

टपकने लगता है। जहां बूंद टपकती है वहां शिव-लिंग के प्रतीक के रूप में एक पत्थर रख दिया जाता है। एक-एक बूंद टपकने वाला यह जल शिव को समर्पित माना जाता है। लोक-मान्यता के अनुसार यह पानी मृतक के मुंह में पड़ता है। इस कुज्जु को 'चुआरू' [जिस में से पानी चुड़ता (टपकता) हो] कहते हैं। इसके पश्चात् मृतक के सरीकों तथा घर वालों का यह दायित्व आ बनता है कि मृत्यु के दस दिन बाद तक मृतक के नाम पर जलाया गया न तो दीपक ही क्षण भर के लिए बुझे और न ही चुआरू में से पानी टपकना बन्द हो। यह एक प्रकार की सख्त नौकरी होती है, इस लिए दीपक के पास तेल की बोतल, चुआरू के पास धो-मांज कर पानी की गागर (घड़ा नहीं) तथा गड़वी रख दी जाती है। समय-समय पर दीपक के तेल तथा चुआरू के पानी पर कड़ी नजर रखी जाती है। दीये में तेल तथा चुंआरू में पानी पुरुष ही डालते हैं। यदि औरतें पानी तथा तेल डालें, तो प्राय: दीपक बुझ जाता है और चुआरू में पानी बन्द हो जाता है। जिस मृतक के दीपक तथा चुआरू मेंगड़बड़ होती है, वह व्यक्ति अच्छे संस्कारों वाला नहीं माना जाता। जो व्यक्ति कृपण प्रवृत्ति का हो अथवा जहां सफाई आदि का ध्यान नहीं होता वहां तेल अधिक जलता है और चुआरू का पानी रुक जाता है। दीपक ठीक से जलने तथा चुआरू के पानी के ठीक से टपकने के लिए यह आवश्यक है कि मृतक के घर में भोग-विलास न किया जाये, अधिक रोना-धोना न हो। लोक-विश्वास है कि जितना रोया जाता है, या नाक साफ किया जाता है, मृतक की आत्मा को अपनी मंजिल तय करने में उतनी ही भयंकर, गम्भीर तथा गन्दे पानी वाली नदी पार करनी पड़ती है। साथ ही प्रेतात्मा को यम खूब सताते हैं। प्रेतात्मा दु:खी रहती है। मृतक के परिवारों का यह दायित्व बनता है कि वे ऐसा कोई भी काम न करें जिससे प्रेतात्मा को दु:ख पहुंचे। यह दीपक तथा चुआरू इस दिन तक बराबर जलते तथा चलते रहते हैं। सरीकों के घरों का एक-एक मर्द मृतक के घर पर रात को सोने जाता है। वहां बराबर यह ध्यान रखा जाता है कि दीपक तथा चुआरू बराबर काम करते रहें। दस दिन तक प्रति दिन प्रात:काल पुरोहित से प्रेतात्मा के प्रति पिंडदान और सायंकाल तिलांजलि (तीन दोनों में जोत, तिल दुलस्सी) दिलवायी जाती है। परिस्थितिवश दशवें दिन दस पिंड भी इकट्ठे दिला दिये जाते हैं।

अस्थि-संचयन :

अस्थि-चयन (फुल्ल-चुगण) दाह-संस्कार वाले दिन या उससे अगले दिन कर लिया जाता है। अस्थि-चयन के लिए प्राय: सरीक (बिरादरी) दो तीन व्यक्ति तथा जिसने पिंड दिया हो, वह व्यक्ति जाता है। अस्थि-संचयन के लिए बाटी में थौड़ियां, बबरू, घुंघणु, तीन झंडियां, पंचगव्य तथा एक थैली ले जाते हैं। श्मशान-भूमि पर पहुंच कर पहले देख लिया जाता है कि मुर्दा जल गया है या नहीं। यदि कसर रह गई हो पहले उसे जलाया जाता है फिर सल् पर पंचगव्य छिड़क कर सल् को पानी से ठण्डा करके अस्थियां चुन कर बाटी में डाल कर, धो कर थैली में डाली जाती हैं। इसके बाद राख तथा कोयलों को ढेर की शक्ल में इकट्ठा करके, ढेर पर लम्बे-लम्बे तीन पत्थर टिका दिए जाते हैं। इन तीन पत्थरों पर एक कुज्जु (पानी का भर कर) लाल टल्ली (कपड़े का टुकड़ा) से बांध कर रख दिया जाता है। पुन: थौड़ियां, बबरू तथा घुंघणु चार पत्तों पर रख कर सल् के चारों कोनों में रखे जाते हैं, इसे प्रेतात्मा के निमित्त 'बलि' देना कहते हैं। सल् को अन्तिम प्रणाम करके अस्थियों की थैली किसी पेड़ पर रख कर स्नान कर

लिया जाता है स्नान के बाद उस थैली को हरिद्वार ले जाते हैं, या किसी पेड़ पर रख कर किसी भी दिन चले जाते हैं। अस्थियों को जमीन पर नहीं रखते। अस्थि-प्रवाह मृत्यु से दस दिन के भीतर होना शुभ माना जाता है। वहां से लौटते समय गंगाजल, जनेऊ, प्रसाद, गंगोटी आदि खरीद कर ले आते हैं। यही गंगाजल, क्रिया-क्रम में प्रयोग किया जाता है।

दस-तेरह :

मृत्यु से दस दिन तक सोमवार, बुधवार, शुक्रवार तथा शनिवार को 'वार' मनाये जाते हैं। इन दिनों मृतक के सम्बन्धी तथा अन्य बिरादरी के लोग शोक में सम्मिलित होने के लिए आते हैं, इसे 'मुकाण' कहते हैं। इन्हीं दिनों (पछणो के वार से पहले) पुरुष मृतक के ससुराल तथा स्त्री के पीहर में, मृतक के परिवार के सदस्य तथा गोती (गोत्रज) सरीक पुरुष तथा स्त्रियां मुकाण देने जाती हैं। इस 'मुकाण' का अभिप्राय: शोक को दो घनिष्ट परिवारों में बांटना होता है। मृतक के यही सम्बन्धी क्रिया-कर्म का सामान जुटा ले आते हैं जिससे मृतक-परिवार को किसी न किसी सीमा तक आर्थिक सहायता मिल जाती है।

कांगड़ा के मृतक-संस्कारों में दसवां दिन भी विशेष महत्व का है। इस दिन सुबह बड़े तड़के ठीकरा (दीपक तथा चुआरू) उठा कर जलाना होता है। रात को जो पुरुष मृतक के घर पर सोऐ हुए होते हैं उनमें से दो या तीन व्यक्ति ठीकरा आदि को उठा कर दूर कहीं खड्ड, नाले में अथवा सूनी जगह ले जाते हैं। दीपक जलाया हुआ ही ले जाया जाता है। वे अपने साथ सोक तंगड़ियां या बलैठियां (ब्यूल नामक पेड़ की टहनियां जिनका छिलका पानी में गला कर उतार लिया गया होता है) ले जाते हैं। इस सारी सामग्री को बड़ी सावधानी से जलाया जाता है। बराबर ध्यान रखा जाता है कि कोई चीज तनिक भी बचने न पाए। इस सामग्री को बड़े तड़के इसलिए ले जाया जाता है कि कोई व्यक्ति रास्ते में न मिले। ठीकरा उठाने के बाद उस स्थान पर छलनी में आटा डाल कर छान दिया जाता है। सूर्योदय होने पर उस आटे पर किसी न किसी प्राणी का पांव लगा हुआ देखा जा सकता है। लोक-विश्वास है कि जिस जीव का पैर लगा हो मृतक उसी की योनि में जाकर जन्म लेता है।

'वार' के दिनों में स्त्रियों का रोना बड़ा हृदय विदारक होता है। औरतें मृतक के गुण कथन करके कीरने (मृत्यु गीत) गाती हुई छातियां पीट कर स्यापा करती हैं। नाइन मृत्यु गीतों की 'लुआण' (गीत के बोल) पाती है और फिर शेष औरतें उसे दोहराती हैं। औरतों के इस रोने-धोने को पिड़ बज्जणा (मल्ल-युद्ध) कह कर मन बहलाते हैं।

कपड़े :

दसवें दिन प्रात: पुरोहित पिंड दान कराता है। घर की औरत मौन रह कर बुहार लगाकर गोबर फेरती हैं। कपड़े भिगो कर परात में रख लेती हैं। बिरादरी की शेष औरतें भी अपने परिवार के मैले कपड़े धोने के लिए तैयार हो जाती हैं। पिंड देने वाला पिंड उठा कर, बुहार देने वाली औरत दस दिन के कूड़े, बचे हुए गोबर तथा जिन ईंटों पर पिंड पकाया गया होता है उस सारी सामग्री को उठा कर एक टोकरी में रख लेती है। कूड़े की इस टोकरी में एक बोंकरी (झाड़ू) तथा

सोमसी

एक बिन्ना (बैठने का आसन) डाल कर बुहार लगाने वाली औरत उठा कर कूएं की ओर बिना बोले सबसे आगे चलती है। गोर (गो-पथ) पार करके पगडंडी के किनारे वह कूड़े की टोकरी को रख देती है। उसके पीछे-पीछे गांव की स्त्रियां तथा पुरुष कपड़े धोने के लिए चलते हैं। मृतक के परिवार का एक सदस्य पंचगव्य तथा तेल आदि साथ ले लेता है। मृतक परिवार की एक औरत एक स्थान पर बैठ कर कपड़े धोने लगती है शेष औरतें उसके बांएं हाथ को क्रमशः बैठती जाती हैं। यदि पानी बहता हुआ न हो तो मर्द कुएं में से पानी निकाल-निकाल कर देते हैं। मर्द नाई से हजामत करवा कर अपने पहने हुए कपड़े धोते हैं और नहाते हैं। जिस व्यक्ति ने पिंड दिया हो वह पिंड प्रवाह करके सिर की कफनी को भी वहीं प्रवाहित कर देता है। इस व्यक्ति की दसवें दिन हजामत नहीं बदली जाती। कपड़े धोने के बाद औरतें भी पंचगव्य छिड़क कर नहाती हैं। जिस परिवार का व्यक्ति मरा हुआ हो, उसकी औरतें बचा हुआ साबुन तथा थत्थू (थापी) वहीं फैंक देती हैं। औरतें किसी विवाहित धी धियाणा या कुंवारी कन्या से सिर में तेल डलवा लेती हैं। बचा हुआ तेल एवं कंघी वहीं फैंक देती हैं। कपड़े धुलाई समाप्त हो जाने पर, जो आदमी या औरत सबसे बाद आया हो, सबसे पहले घर को जाने दिया जाता है। फिर उसके पीछे शेष लोग चलने लगते हैं। आधी दूरी तय करने पर सब थोड़ी देर के लिए बैठ जाते हैं। मृतक के घर के पास आकर द्रूवादल तोड़ कर मृतक के घर जाते हैं। वहां कमरे में एक दीपक (कड़वे तेल का) जल रहा होता है, उसके पास चने की दाल के भीगे हुए दाने रखे होते हैं। द्रूवादल दीपक के पास रख कर औरत मर्द दो तीन दाल के दाने उठा कर चबा लेता है। इस क्रिया कलाप का प्रतीकार्थ यह है कि भविष्य में इस घर में सुख शांति रहे, सब कुछ द्रूवादल की तरह हरा भरा रहे तथा यहां के प्राणियों को अन्न मिलता रहे। फिर सब अपने-अपने घर जा कर भोजन आदि करते हैं।

ग्यारहवें तथा बारहवें दिन मृतक के घर को पवित्र करने के निमित्त शास्त्रानुसार क्रिया-कर्म का कार्य सम्पन्न कराया जाता है जिसमें पुरोहितों का एक दल सामूहिक रूप से कार्य करता है। नवग्रह पूजन, हवन आहुति, पाठ (गायत्री सवालक्ष, न्यूनतम १०००), आहूति-मांजन, पूर्णाहूति, शय्यादान, श्राद्ध, नारायण-बलि तथा सपिंडी आदि। इस कर्म को भीतर कमरे में पुरोहित तथा बाहर चारज (आचार्य) कराता है। तेरहवें दिन शय्यादान की क्रिया सम्पन्न करा कर मृतक के शरीर के प्रतीक के रूप में मोहरा (एक शिला जिस पर मृतक का रूप उकेरा होता है या लम्बा पत्थर) रखा जाता है। इस पर घी मलने के बाद सिंदूर पोता जाता है। लाल सुर्ख होने पर छोटी सी लाल टल्ली (कपड़ा) उढ़ा कर डोरी से बांध देते हैं। मोहरा तैयार होते ही आचार्य मृतक के परिवार वालों को सूचित करके तीन संकल्प कराता है— १. मृतक के परिवार के सदस्य इस मोहरे को कहीं जलाशय के समीप पीपल के पेड़ के नीचे रख कर एक वर्ष भर प्रतिदिन तिल डाल कर एक लोटा जल चढ़ाया करेंगे। २. प्रतिदिन गोधूली (सूर्यास्त के समय) बेला में मृतक के नाम की आंगन के किनारे पत्थर पर बाती जलायेंगे तथा जल चढ़ायेंगे, ३. प्रतिदिन किसी को नेती (भोजन) करायेंगे। पीपल के पास रखे मोहरे पर रविवार तथा मंगलवार को जल नहीं चढ़ाया जाता। सूतक-पातक में भी जल चढ़ाना निषिद्ध है, बत्ती जलाई जा सकती है। वर्ष भर में सूतक-पातक आ जाने के भय से प्रायः पहले दिन ही पीपल के पास रखे मोहरे पर ३६५ लोटे जल चढ़ा दिये जाते हैं। लोक मान्यता है कि यह जल मृतक के मुंह में पड़ता है। एक-एक तिल बबरु के आकार जितना बड़ा होकर मृतक को भोजन के रूप में मिलता है। इसका भी अधिकांश यम छीन

झपट कर खा लेते हैं। मृतक के हाथ बहुत थोड़ा लगता है। सायंकाल दी जाने वाली बाती मृतक की मंजिल में होने वाले अन्धेरे को दूर भगाती है, ऐसा लोक विश्वास है। मृतक के नाम पर प्रतिदिन जो भोजन कराया जाता है उसे प्राय: कम ही लोग खाया करते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह भोजन गाय या बछिया को खिलाने का विधान है अथवा सूखा राशन किसी लंगर आदि में दे दिया जाता है।

मृतक के मृत्यु-संस्कार कर देने के बाद प्रतीक रूप में रखा जाने वाला मोहरा 'देवकुल' का अंग बन जाता है। इस सम्बन्ध में अमर कथाकार पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने कांगड़ा घाटी के सांस्कृतिक मूल्यों के परिवेश में अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'देवकुल' में लिखा है—"कांगड़ा जिले के पहाड़ी प्रान्त में, जो राज-मार्गों से बिदूर तथा मुसलमानी विजेताओं तथा प्रभावों से तटस्थ रहा, अब तक देवकुल की रीति चली आती है। वहां प्रत्येक गांव के पास जलाशय पर मरे हुओं की मूर्तियां रखी जाती हैं। मेरे ग्राम गुलेर के देवकुल का वर्णन सुन लीजिए। गुलेर बहुत पुराना ग्राम है। करोचवंश की बड़ी शाखा की राजधानी वह हुआ, छोटा वंश कांगड़े में राज्य करता था। श्मशान तो नदी के तीर पर है, जहां पर कई कुलों की सतियों की 'देहरियां' हैं। गांव के बाहर श्मशान से पौन मील इधर, बछूहा (वत्ह+खूहा=वत्सकूप) नामक जलाशय है जिस पर वत्सेश्वर महादेव उसके पुजारी रौलु (रावल) ब्राह्मण होते हैं, जो मृतक के वस्त्रों के अधिकारी हैं। वत्सकूप तथा महादेव के मन्दिर के पूर्व को एक तिवारा सा है। छत गिर गई है। खम्बे और कुछ दीवालें बची हैं। वहां पर सैंकड़ों प्रतिमायें हैं जिन्हें मूहरे (मोहरे) कहते हैं। मृत्यु होने के पीछे ग्यारहवें दिन जब महाब्राह्मणों को शय्यादान करते हैं उस समय लगभग एक फुट ऊंचे पत्थर पर मृतक की मूर्ति कुराई जाती है। मूर्ति बनाने वाले गांव के पुश्तैनी पत्थर गढ़ने वाले हैं जो पनचक्कियों के घरट बनाते हैं। मूर्ति सिन्दूर लगा कर शय्या के पास रख दी जाती है। दान के पीछे शय्या और उपकरण महाब्राह्मण ले जाता है। मूर्ति इस देवकुल में पहुंचा दी जाती है। उस कुल के आदमी जलाशय पर स्नान-संध्या करने जाते हैं तब मूर्ति पर कुछ दिनों तक जल चढ़ाते रहते हैं।...... सभी उच्च जातियों के मृतक, मूर्तिरूप में, इस देवकुल में गांव बसा कर रहते हैं। गुलेर के राजाओं तथा रानियों के मूहरे भी यहीं हैं। वे दो ढाई फुट ऊंचे हैं। उनके नीचे राजा-राणी अक्षर भी लड़कपन में हम लोग पढ़ा करते थे। गांव के बुड्ढे पहचान लेते हैं कि यह अमुक का मुहरा है। कई वर्षों तक हम अपने पितामह की प्रतिमा को पहचानते तथा उस पर जल चढ़ाते थे। पिछले वर्षों में खेलते हुए लड़कों ने या किसी और ने निवेश बदल दिया है। पत्थर रेतीला दरयाई बालू का है, इस लिए कुछ ही वर्षों की धूप और वर्षा से खुदाई से मालूम हो जाती है। पुरुष की मूर्ति बैठी बनाई जाती है, स्त्री की खड़ी। पुरुष-मूर्ति के दोनों ओर कहीं-कहीं चामर-ग्राहिणियां भी बनी होती हैं। राजाओं की मूर्ति घोड़े पर होती हैं। वस्त्र व शस्त्र भी दिखाये जाते हैं। सड़क के किनारे जो जलाशय मिलता है वहां गांव पास हो तो ८-१० प्रतिमाएं रखी मिलेंगी। कुल्लू, मण्डी तथा शिमला के कुछ पहाड़ी राज्यों में भी यही चाल है। यह प्राचीन देवकुल की रीति अब तक उन प्रान्तों में है, जहां परिवर्तन बहुत कम हुए हैं।"

गुलेरी जी की उक्त देवकुल निबंध सन् १९२० ई० की सरस्वती में छपा था। आज इस निबन्ध को लिखे हुए लगभग ५० वर्ष होने वाले हैं, कांगड़ा की मृतक-संस्कृति ज्यों की त्यों मौजूद है।

मृत्यु के तेहरवें दिन शय्यादान के बाद बिरादरी को मृत्यु-भोज दिया जाता है। इसे 'सोलहा' कहते हैं। ब्रह्मणेतर शेष जातियों में मृत्यु-भोज सोहलवें दिन ही होता है। मृत्यु के बाद हर महीने मासकू (महीना पूरा होने वाला अन्नदान) मणसा जाता है। पहले चार महीनों में लगभग पन्द्रह दिन के बाद आठ अध-मासक तथा शेष चार पूरे मासकू मणसे जाते हैं। इस प्रकार पूरे सोलह मासकू साल भर में किये जाते हैं। तब बारखी (वार्षिकी) मनाई जाती है। बारखी पर पुरोहित, ग्रह पूजन, शांति पाठ तथा शय्यादान कराता है। चार साल पूरे होने पर चवर्ख, चबरी (चतुर्थ वर्ष) मनाई जाती है। इस दिन भी ग्रह पूजन, शांति पाठ तथा शय्यादान के बाद भोज देने की प्रथा है। पांचवें साल शुरु होने पर तिथि पर ख्या तथा छठा साल शुरु होने पर पितृ पक्ष में श्राद्ध करना शुरू करते हैं। वर्ष में दो बार 'ख्या' तथा श्राद्ध के अवसर पर पिंड दान करवा कर ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

मृतक के क्रिया-क्रम के बाद परिवार में दिनचर्या के निमित विशेष सावधानियों की ओर ध्यान दिया जाता है। लगभग एक मास पर्यन्त कड़ाई चूल्हे पर नहीं चढ़ाते। पक्का खाना (तला हुआ) नहीं बनाते। लहसुन, प्याज तथा हींग का रसोई में प्रयोग नहीं किया जाता। मांस खाना निषिद्ध रहता है। तेल, हींग तथा पक्के खाना तभी बनता है जब धी-धियाण (बेटी) ससुराल से आकर स्वयं ऐसी रसोई पकाती है या त्यौहार विशेष पर अपने घर से पक्का खाना बना कर लाती है। विधवाएं जीवन पर्यन्त मांस नहीं खाती। चमकीले कपड़े नहीं पहनती। सोलह श्रृंगार नहीं करती। सफेद चादर ओढ़ती हैं। साल भर सलवार न पहन कर लंहगा पहनती हैं। चारपाई पर नहीं सोतीं कई-कई पतिव्रताएं तो आजीवन भू-आसन ही लगाती हैं।

मृतक के घर में साल भर तक मंगल-कार्य नहीं किये जाते। त्यौहारों पर हर्ष उल्लास नहीं दिखाया जाता। त्यौहार सूने-सूने से बीतते हैं।

ऐसे हैं ये कांगड़ा के मृत्यु संस्कार, बड़े कठोर, रूढ़ तथा खर्चीले। इन संस्कारों में निहित सामाजिक चेतना, लोक धारणा तथा सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों को प्रदेश के अन्य जनपदों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन का विषय भी बताया जा सकता है।

हिन्दी-विभाग
श्रीराम कालेज ऑफ कॉमर्स
दिल्ली-११०००७

—:००:—

चित्रकला केन्द्र गुलेर : जहां 'कांगड़ा कलम' जन्मी

— डॉ० श्रीकान्त प्रत्यूष गुलेरी

आजादी से पूर्व भारतवर्ष छोटी-छोटी रियासतों में बंटा पड़ा था। पहाड़ी रियासतों में गुलेर कांगड़ा और चम्बा बहुचर्चित हैं। चित्रकला के इतिहास में जिस 'कांगड़ा कलम' को कोमल-सौंदर्य की सृष्टि कहा जाता है, उसका प्रादुर्भाव और सम्यक विकास गुलेर में ही हुआ था। प्राचीन हस्त-लेखों एवं गुलेर राज्य के उपलब्ध दस्तावेज़ों के आधार पर गुलेर की स्थापना राजा हरिश्चन्द्र ने सन् १२४७ ई० में की थी। डा० एम०एस० रन्धावा ने 'कांगड़ा कला, देश और गीत' पुस्तक में गुलेर की स्थापना १४०५ ई० दी है। संभवत: उन्होंने किंवदन्तियों का अधिक प्रश्रय लिया हो। गुलेर के राज्याश्रित हिन्दी कवि बृजलाल ने अपने ग्रन्थ 'राम रस लहरी' में प्राची नाम गोपाचल लिखा है। कई हस्तलिखित पांडुलिपियों में इसे 'ग्वालेर' तथा गोलेर भी लिखा मिलता है। गुलेर की स्थापना की कहानी भी अत्यन्त रोचक है। कांगड़ा के तात्कालिक राजा हरिश्चन्द्र शिकार की टोह में अपने साथियों से बिछुड़ गए। भटकते-भटकते दुर्भाग्य से वे एक घास-फूंस से ढके कुएं में गिर पड़े। सत्ताईस दिन के उपरान्त 'लवाना' नामक जाति के पथिकों ने उन्हें अन्धकूप से बाहिर निकाला। कांगड़ा में उनके छोटे भाई कर्मचन्द को रानियां राज्य भार सौंप कर सती हो गईं। हरिश्चन्द्र को जब कांगड़ा के निकट जाकर यह पता चला कि कर्मचन्द ने राज्य-भार संभाल लिया हैं और रानियां सती हो गई हैं, उन्हें अनुज को पदच्युत करना रुचा नहीं।

बाण गंगा के सुरम्य तट पर एक ग्वाले ने हरिश्चन्द्र को बाघ-बकरी को एक साथ पानी पीते दिखलाया। कहा जाता है कि ग्वाले की महाबलि देकर उस स्थान पर गुलेर के किले का निर्माण किया गया। उक्त कथा का वर्णन गुलेर के कवि (सत्रहवीं शताब्दी) उत्तम ने अपने घटनात्मक महाकाव्य 'दिलीप रंजनी' के षष्ट उल्लास में विस्तार से किया है। 'दिलीप रंजनी' काव्य ऐतिहासिक दृष्टि के साथ-साथ साहित्यिक मूल्य में भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। राजा हरिश्चन्द्र का सम्बन्ध महाभारत कालीन राजा सुशर्मचन्द्र से जोड़ा जाता है। गुलेर राज्य की राजधानियां हरिपुर और नन्दपुर दो स्थानों में रही है। हरिश्चन्द्र को मिलाकर गुलेर के उनत्तीस राजा हुए हैं।

मुगल दरबार के हिन्दू कलाकार जो नादिरशाह के आक्रमण के कोप-भाजन बने थे, इधर-उधर बिखर गए, उनमें से कइयों ने पहाड़ी रियासतों में आकर आश्रय ग्रहण किया। प्राचीन कलाकारों में पंडित सेऊ और उनके पुत्र नैनसुख तथा मानक की चर्चा की जाती है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि 'कांगड़ा-कलम' का शुभारम्भ इन्हीं कलाकारों के करकमलों से गुलेर में किया गया। नैनसुख का गुलेर से जम्मू चले जाने का प्रमाण भी मिलता है। इसके विपरीत हरखू नामक चित्रकार का बसोहली से गुलेर आने का उल्लेख भी है। उपर्युक्त कलाकारों द्वारा बनाए गुलेर नरेश विक्रम सिंह तथा दिलीप सिंह के कई चित्र उपलब्ध होते हैं। इन नरेशों के चित्रों में अकबर शैली

का स्पष्ट प्रभाव दिखता है और वे सभी गुण हैं जो मुगल काल में पाए जाते हैं। गुलेर चित्रशैली की जो नींव दिलीप सिंह नरेश के काल में रखी गई उसका चरम विकास गोवर्द्धन चन्द के समय अठाहरवीं शताब्दी में हुआ। गुलेर के बहुत सारे चित्र राजाओं-रानियों के हैं। गोवर्द्धन चन्द के चित्र संख्या में सबसे अधिक हैं। कुछ चित्र राधा-कृष्णा की रास-लीलाओं तथा मनुष्य के उन्मुक्त और निर्बाध प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं।

गुलेर के चित्रकारों को स्थानीय मंत्रियों, पुरोहितों, गुरुओं, राजानकों तथा कवियों ने भी बड़ा प्रभावित किया है। इनके चित्र गुलेर गांव में आज भी विद्यमान हैं। हीर-रांझा, मिर्जा-साहिबा और सोहनी-महिवाल के चित्र भी सौंदर्य और कला की दृष्टि से कम आकर्षक नहीं हैं। पाठकों और कलापारखियों के ज्ञान के लिए ऐसे चित्रों की चर्चा की जा रही है जो आज दिन तक अनुपलब्ध थे। इन चित्रों के प्रकाश में आने से 'गुलेर चित्रशैली' के कतिपय अज्ञात कोण उजागर होने की दृढ़ संभावना है। इनमें से एक चित्र में काली माता को शव सवारी पर दिखलाया गया है। माता के गले में मुंड-माला है। ऊपर से देव-गन्धर्व फूल बरसा रहे हैं। दोनों में वृक्ष हैं तथा भक्तादि अर्चना करते दर्शाए गए हैं।

एक अन्य चित्र में किसी राजा-रानी को कमल-पुष्प पर बैठाया हुआ चित्रित किया गया है। एक ओर बारीक पत्तियों का पहाड़ी वृक्ष दिखाई दे रहा है। इस चित्र में रानी नव-दुल्हन सी प्रतीत हो रही है। राजा ने गले में 'तवीत' पहन रखा है जो उसे धार्मिक-विश्वासी प्रकट करता है। अन्य चित्र 'देहरा' है जिसका प्रयोग विशेषकर हमारी शादियों के अवसर पर किया जाता है, वैसे इसे प्रत्येक मांगलिक अवसर पर शुभ माना जाता है। यह कुल-वृद्धि का सूचक भी है। इसके दोनों किनारों पर शुक दिखाए गए हैं। देहरे का चित्र सब चित्रों में आकार की दृष्टि से बड़ा है।

एक चित्र में हाथी लक्ष्मी मैय्या को स्नान करवाते प्रदर्शित हैं। अन्यत्र राम-सीता सिंहासन पर आरूढ़ हैं। लक्ष्मण चामर लिए हैं और हनुमान जी सम्मुख खड़े स्तुति करते चित्रित हैं। गुलेर के अधिकतर चित्रों में पहाड़, नदियां, केले के पेड़ तथा जंगल आदि दिखाए गए हैं। इन चित्रों की रेखाएं संगीत की सृष्टि करती प्रतीत होती हैं। सन् १७६० ई० में यही गुलेर कला जब चरमोत्कर्ष पर पहुंची तो 'कांगड़ा कलम' के नाम से विख्यात हुई।

कीर्ति भवन, गुलेर-१७६०२८,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)।

●★●

जिला ऊना की भाषई स्थिति

—सरोज सांख्यायन

वर्तमान जिला ऊना भाषाई स्थिति के स्तर पर तीन बोली सूत्रों में विभक्त है। ऊना नगर से अम्ब नगर तक ऊना दून है। इस दून की बोली पर प्राचीन किसी शिवालिकी बोली का अवशेष दिखता है। पौंग डैम तलवाड़ा से उत्थानशील पर्वतमाला जो चिन्तपूर्णी भरौंई के पास लगभग साढ़े तीन हजार फुट ऊंची होकर ढलान बनाती हुई सोलासिंगी पहाड़ी में मिल कर नैनादेवी में समाहित हो जाती है। इस चिन्तपूर्णी धार और इसके साथ *Table* भूमि में बसे गांवों की भाषा शत-प्रतिशत कांगड़ी का रूप है। सोमभद्रा (स्वान नदी) के पार हिन्दु गुजरों की आबादी है उस इलाके को स्थानीय भाषा में 'बीत' कहते हैं। यहां की 'बीत' बोली प्राचीन-शिवालिकी के अवशेष के साथ आठवीं-दसवीं शताब्दी की गुर्जरी भाषा का सम्मिश्रण है। हिन्दी पाठकों की जानकारी के लिए हम कुछेक हिन्दी वाक्यों के शिवालिकी, कहलूरी और चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी के रूप दे रहे हैं :—

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
१. दौड़ना पड़ेगा।	दौड़ने पौणा, दौड़ना पऊंगा	नठणा पैंणा (नठणा-पैंगड़ा)	नट्ठणा पौन्गा
२. बैठा नहीं जाता	बैठी नी हुन्दा	वैह् नेई हुंदा	बैठ्या नी जान्दा (बही नी हुन्दा)
३. नौकरानी रोती थी	नोकरयाणी रों थी (नकरयाणी रों थी)	नुकराणी रोंदी थी (नौकरानी रौंदी थी)	नुकराणी रोंदी थी
४. क्या मैं लेट जाऊं ?	क्या हऊं लम्मा पई जाऊं	की मैं लम्मा पै जावां (कि मैं लेट जावां)	क्या मैं सेई जां
५. क्या मैं सो जाऊं ?	क्या हऊं सई जाऊं	कि मैं सो जावां (की मैं सो जावां)	क्या मैं सेई जां
६. मैं चलता रहा	हऊं चलदा रैहया	मैं चलदा रेहा (मैं तुरदा रेहा)	हौं चलदा रिहा
७. खाने को कुछ नहीं मिला	खाणे जो कुछ नी मिह्ल्या (खाणे जो किछ नीं मिलेया), (खाणेयों)	खाने नू कुछ नहीं मिलया (खाण नूं कुछ नेई लभा)	खाणे जो तुहगा बी नी मिलेया

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
८. चबाने से दर्द होता है।	चबाणे ते पीड़ हुआं ई (चबणे ते पीड़ हुआं ई)	चब्बण नाल पीड़ हुंदी है (चबने ते दर्द हुंदा है)	चब्बणे ते पीड़ हुंदी ऐ।
९. बिच्छू ने काटा होगा	बिच्छुए डंग्या हूणा बिच्छुए कट्या हूणा बिच्छुए डंग मारेया हुंगा	डन्गू लड़ गया डंगू नैं खादा होणा	डण्गुयें मुच्च मारेया हुन्गा
१०. छुरी से हाथ कट गया	छुरिया कने हत्थ बढोईग्या	चाकू नाल हत्थ कट गया छुरी नाल हत्थ बड्ढ हो गया	छुरिया ने हत्थ बड़होई गया
११. हथेली से पसीना निकल रहा है।	हथयालिया ते पशीना निकल्या रांह, त्थेलीग्रा ते पशीना निकल्यारां	हथियाली ते पशीना निकल दा ए, हथ नू गर्मी पै गई।	थिहलिया चो परसीना ऐ निकला दा
१२. मेरी सहेली खेलती खेलती गिर पड़ी	मेरी सहेली खेहलदे-खेहलदे रूढ़ी गई (रूढ़ीगी)	मेरी स्हेली खेलदी-खेलदी डिग पई	मेरी सेहली खेलदी-खेलदी ढई पई
१३. ऊन कातकर कम्लब बनाए जाते हैं।	ऊन कत्ती ने कम्बल बणा हैं, उन्न कत्ती कने पट्टू बणाए जांदे, उन्न कत्ती ने पट्टू बणाएं	उन कत्त कैं कम्बल बणाए जांदे हन, ऊन कत कैं कम्बल बनाए जाते हैं।	उन्न कत्ती कैं पट्टू बणाए जांदे हन
१४. वह बड़ा अक्खड़ और जिद्दी आदमी है।	सैं बड़ा अक्कड़ कने जिडा माह्णु आ, सैं बड़ा तरेड़ी कने जिद्दी आदमी हा, से बड़ा अक्खड़ कनें जिद्दी आदमी हा, सैं बड़ा करोड़िया कने हठी आदमी आ	ओ बड़ा हठी आदमी है। ओह बहुताई आकड़ खां नाल औछड़ बंदा है।	सैह खरांट कन्नै जिद्-खोर माहणू ऐं।
१५. तुम से तो पशु ही भले हैं।	तुह ते पसु ही खरे हे, तिज्जो ते तां पसु ही खरे हुएं तुह ते तां डंगर खरे हन।	तेरे से तो डंगर भी खरे है, तेतों तां डंगर ही खरे	तेते तां डंगर ही खरे हन।
१६. आग जल रही है	अग्ग बली री, अग्ग जल्या रांही, अग्ग बल्लेयां करांई अग्ग बली रह्यां ई।	अग्ग जल्दी है, अग बल रेई है।	अग बलां करदी ऐ।

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
१७. तिनके जल रहे हैं	तिमड़् बली रे, तिणके-जल्यांरांहे, डक्खे बलेया-रांएं, तुल्लियां बल्यारीयां	कूड़ा जलदा है, कख–जल रहे हन	कक्ख फकोआ करदे हन्न ।
१८. धोबी ने शिकारी को एक कहानी-सुनाई	छिम्बे शिकारिए जो एक घाणी सुणाई, छिम्बे हेड़िएयो एक कथा सुणाई	धोबी ने शिकारी नू इक कथा सुनाई, छींबे नैं शिकारी नू इक कहाणी सुणाई	धोबीये सकारिये जो इक कथा सुणाई
१६. बेसमझ आदमी है कुछ खोकर ही संभलेगा	बेसमझ माह्णू (आदमी) कुछ ग्वाई ने ही-सम्हल्गा	बेबकूफ आदमी है ठोकर खाकै समझगा, वेअकल बंदा है, ठोकर खाकै-अकल आएगी	वे अक्ला ऐ कुछ गुआई कैं ई सम्भल्णोन्गा
२०. धूल और धूप से आंखों को बचाओ	घूड़ा होर धुप्पा ते हक्खीं जो बचाओ, रेता कने धुप्पे ते हाक्खीं जो-बचाओ, धुड़ी धुप्पे ते आक्खीं जो बचाओ	मिट्टी और धुप से अखां नू बचाओ, धुड़ धुप तों अखां नू बचाओ	धुड़ कन्ने धुप्पा ते-हाखीं जो बचाओ ।
२१. धीर पुरुष आपत्तियों से नहीं घबराते	धीरजा वाल्हे माहणू मुसीबतां ते नी डरदे, धीरजमान माणुह आफता ते नी घाबरदे	धीरज वाले बंदे मुसीबतां ते नेई घबरांदे ।	बहादुर मुसीबतां ते नी घाबरदे
२२. वह तुम से लज्जा करती है।	सैंह् तुह ते समांहीं, सह् तूह ते शरम करांहीं, से तूह ते सरमावांई .	ओह तुहाथों शरमांदी है, वह तोहाते शर्मंदी है	सैंह तेते शरमान्दीऐ ।
२३. हमने पेड़ों की टहनियां काट-डाली	असें डाला री टहणीआं बढ़ी दितियां, असें डाला री टहनियां कटी दितीं, असें बूटेयां रियां डालियां बढ़ी तियां	असीं रूखां दियां टैहनियां बड्डी दितियां	असा रूक्खां दे डाल् बड्ही दित्ते
२४. क्या कहीं रेत से भी तेल निकाला जा सकता है।	क्या किस्थी रेता ते वी तेल कढ्या जाई सक्काहं, कदी रेता ते बी तेल निकली सकां ए	क्या बोलां रेते दा भी तेल निकालया जांदा है की उत्थै रेते च ते वी तेल कढेया जा सकदा है	क्या रेते ते कदी तेल कड्हा जाई सकदा ऐ ।

	हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
२५.	चूहिया को बिल्ली उठा ले गई।	चूहिया जो बराली (बिल्ली) ठुआई कने लई गई, चुहिया जो बिल्ली चक्की ने लईगी।	चूही नू बिली चक कै लै गई, चूही नू बिल्ली चुक लै गई।	चूहिया जो बिल्ली चुक्कै कै लई गई।
२६.	वियोगी को चन्द्रमा नहीं भाता।	बरजोगिये जो चन्द्रमा खरा नी लगदा।	दुःखी नू चंद खरा नहीं लगदा, बजोगी (मजनूं) नू चंन नई सुहांदा।	बजोगियो जो चन्द्रमा खरा नी लगदा।
२७.	तोते दाना दुनका खाकर उड़ गए।	तोते दाणा दुणका खाई ने उड़ी गै।	तोते दाने खै कै उड़ गए, तोते चोग चुग कै उड़ गए	तोते दाणा फक्का खाई उड़ी गए।
२८.	वह अपनी चाचियों, मासियों, मामियों के सामने नाचना गाना नहीं करती	सै अपणियां चाचियां, मासियां, मामियां रे साम्हणे नचदी, गौंदी नी ही। सै अपणियां चाचियां, मासियां कने मामियां रे अग्गे नी नचदी गान्दी।	वह अपनी चाचियां, मासियां, मामियां दे सामने नाच गाना नहीं करदी, ओह अपणियां चाचियां, मासियाँ, मामियां मोहरैं नचदी गांदी नेई।	सै अपणी, चाचियां, मामियां, कन्ने मामियां अगैं नचदी गांदी दी
२९.	परांठें, दाल, भाजी, दहीं, पापड़ सब कुछ मिलेगा	पराठें, दाल, सलूणा, दहीं, पापड़ सब कुछ मिली जाणा (मिलणा, मिलगा)	पराठें, दाल, सब्जी, दहीं, पापड़ सबो कुछ मिल जांगड़ा	परौंठें, दाल, सब्जी, दऊं, पापड़ सब्बो किच्छ मिलंगा
३०.	हम आए और तुम उठे तक नहीं।	असें आए कने तुसें उठे तिक नी, असें आए कने तुसें खड़ोए तिक नीं। (बिनी)	असें पुज्जे तुसी उठे तक नहीं, असें आए होर तूं उठया भी नहीं।	असां आए कने तेते उठी बी नी होया
३१.	उन्हें कहीं अकेले मत छोड़ना	तिन्हां जो किते कल्हे नी छड्डो, तिन्हां जो किथी कहल्ले धिख्यां छड्डु दे, तिन्हांओं किते कल्ले नी छड़णा, तिस्सो किती कल्हे नी छडयो।	उन्हाँ नू किते कल्ले मत छडना, उहनो कल्हा नहीं छोड़ना	उन्हां जो कुथीं कल्हेयां मत छड्डुदा
३२.	ऐसी बात मुँह से नहीं निकाला करते	एहड़ी गल्ल मुहां ते नी कढ़दे।	ऐहो जेई गल मूँह तो नेई कडदे, इदां दी गल मुहों कदी नहीं कडदे	ऐसी गल मुंहे ते नी कहड्दे।

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
३३. धुएं के मारे दम घुटा जाता है	धुएं कने साह घुट्टयां कराह्, धुएं रे मारे साह घुट्टी जांदा, धुआं ने साह घुट्टी जांदा ।	धुएं नाल साह घुट रहा है, धुएं दे नाल साह घुटदा जांदा है ।	धुहाखड़े ने मेरा तां साह है घटोआदा ।
३४. नेवले ने सांप को हिलने नहीं दिया	नौल् सर्पा जो हिल्लणे नी दित्या, नउल् सप्पा जो हिलणें नी दित्ता (दितेया)	नौल नै सप नूं हिलण नेईं दित्ता, नौल् ने सप नो हिलण नहीं दित्ता	नौल् सप्पे जो हिलणा नी दित्ता ।
३५. है कोई ब्रज में जो मेरे गोपाल को रोक ले	हैया कोई व्रजा च सै जे मेरे गोपाला जो रोकी लौ (लवे)	है ब्रज बिच कोई जेहड़ा मेरे गोपाल नूं रोक सके ब्रज में काई है जेहडा मेरे गोपाल जो रोक लैवे	है कोई ब्रज बिच जेहड़े मेरे गोपाले जो रोकी सकै ।
३६. मूंग की दाल भिगो कर घी में तल दो	मूंगा री दाल् सेड़ी ने घीउआ च तली देयो, मूंगा री दाल् सग्गी कने घयुआ चतली लौ, मूंगिया री दाल सेड़ी ने घिऊआ च तली देवा ।	मुंगी दी दाल भे कै घयो मे तल देयो, मुंगी दी दाल धो कै घे तल देओ	मुंगिया दी दाल सेड़ी ने घियो च तली दियो (दिया)
३७. आपने पीपल का फल देखा होगा ।	तुसें पिपला रा फल् देखी रा हूणा (हुंगा), तुसें पिपला रा फल देख्या हूणा, तुसें पिपला रा फल देख्या हुंगा	तुसीं पीपला दा फल देखेया हुंगड़ा	तुसां पिपल् दा फल दिख्या ही हुन्गा ।
३८. पकाई खीर हो गया दलिया	रिहन्नी खीर बणी गया दलि्या, रिन्नी खीर हुई ग्या दलि्या, रिन्ही खीर हो गया दलि्या	रिनी खीर बन गया दलि्या	बणाई खीर होई गिया दलि्या
३९. कमाऊ पुत किसको अच्छा नहीं लगता	कमाऊ पुत्त किस जो खरा नी लगदा, कमाऊ पुत्तर (पुत्त) किस्सो नी लगदा खरा	कमाऊ पुत किनूं चंगा नी लगदा, कमाऊ पुत किहनो चंगा नहीं लगदा	कमाऊ पुत कुसजो खरा नी लगदा ।

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
४०. मारे और रोने न दें।	मारो कने रोण नी देयो मारो बी रोणे बी नी देओ	मारना भी, रोण भी नेई देणा, मार कै रोन न देही	मारी वी कनैं रोणा नी दित्ती।
४१. बासी कढ़ी में उबाल आया	बाह्ी कढ़िया बुआल् आया बाहिया कढ़िया च बबाल् आया, बाइए कढ़ीए लैया फुआण, बाही कढ़िया जो बोआल् आया।	बही कढ़ी च उफाण आया, बेही कढ़ी में उबाल दिती।	बहिया कढ़िया च वी बुआल् आया।
४२. खूंटे के बल वछड़ा कूदे।	खूंडा रे सहारे बच्छू कुद्दांह, खुण्डा रे सहारे बछड़ा कुद्दो, खुण्डा रे बल कुद्दे बच्छू, खूण्डा रे आसरे बच्छू कुद्दो।	खूण्डे दे नाल बछड़ा उच्छलदा है, खूण्ड दे नाल बच्छा उटकदा है।	दुग्गे दे सिर नच्चा दा।
४३. उसे जरा समझा दो कि मिठाई बांट कर खाए।	तिस्सो जरा समझाई देओ जे मठयाई बंडी के खाओ, तिस्जो जरा समझाई देओ भई मठ्-याई बण्डी ने खाओ, उस्सो जरा समझाई देओ जे मठ्याई बण्डी ने खाओ तिस्सो जरा समझाई दो वई मठयाई बंडी ने खाओ।	उनूं समझा देओ कि मिठिआई बंड कै खावे, उहनू जरा समझा देओ कि मिठ्ठाई बंड कै खान।	उसजो जरा समझाई दे जे मठायाईया बन्डी कैं खाये।
४४. वह हमको खेलने ही नहीं देता था।	सै असां जो खेलणे नी देन्दा था, सै असां जो तां खेल्हणे ई नी देंदा था।	ओह सानूं खेलन नेई था दिंदा, ओह सानू खेलन नहीं दिंदा था।	सैह सांहजो खेलणा ई नई दिन्दा था।
४५. बारी-बारी छलांग लगाओ।	बारिए-बारिए छाल् मारा बारी-बारी छाल मारो।	बारी-बारी छाल मारो।	बारो–बारिया छाल् मारा।
४६. मरे शेर से जीती बिल्ली भली।	मुईरे शेरा ते तां जियुंदी बिल्ली ई खरी, मरी रे शेरा ते जिउन्दी बिल्ली खरी, मरू रे सेरा ते जिउन्दी बिल्ली ही खरी।	मरे शेर नालों जींदी बिल्ली खरी, मरेओ शेर नाले ते जिन्दी बिल्ली खरी।	मरेओ शेरे ते जीन्दी बिल्ली खरी।

हिन्दी	कहलूरी	शिवालिकी	चिन्तपूर्णी धार की कांगड़ी बोली
४७. पौधा अभी उग ही पाया था कि ओले पड़ गए।	डाल हुल्लीं जम्या था क आहण पई गई, डाल अझे जम्या ही था कने आहण पईगी, बूटा अजें लगेया ही था क आहण पई गई, पौदा अजें जम्या इ था कि आहण पईगी।	बूटा अजे जंमेया ही था कि आण पै गई, बूटा हले ताल्ही जमया था कि आहन पै गई।	डाल अजैं जम्मेया था जे आंण पई गई।
४८. तितलियां फूल-फूल पर मंडरा रही हैं।	गुडरियां फुल्लां-फुल्लां पर गूंजी रीआं, गुडरियां फुल्लां-फुल्लां पर उडेया राहियां, गुडरियां फुल्लां-फुल्लां पर घुमेया करांइयां	तितलियां फुलां पर घुमदिया है, तितलियां हरेक फुल ते चक्कर ला रेइयां हन।	तितलियां (गुडरियां) फुल्ले-फुल्ले पर डुमारियां मारा दियां हन।
४९. उस घोड़े की लगाम पकड़े रखो	तिस घोड़े री लगाम पकड़ी रक्खो (रक्खा), तिस घोड़े री लगाम थम्मी रखो।	अंस घोड़े दी लगाम थंम छडो, उस घोड़े की लगाम फड़ रखो	उस घोड़े दिया लगामा पकड़ी रक्ख
५०. फूल बिन कर माला पिरो दो	फुल्ल चुगी कने माला परोई देयो, फूलां ताल्ली ने माला परोई देओ, फुल्ल तोड़ी ने हार परोई दो, फुल्ल चुगी कने माला परोई देवा	फुल चुग कैं हार बणा देओ, फुलां दी माला पिरो दो।	फुल चुगी कै माला परोई दे।

●★●

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : जीवन और व्यक्तित्व (२)

—डा० पीयूष गुलेरी

गुलेरी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने से पूर्व हम, व्यक्तित्व क्या है, इस पर विचार करेंगे। मानव-व्यक्तित्व एक इकाई है, उसका विभाजन सम्भव नहीं है। व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं—अन्तः पक्ष और बाह्य पक्ष। दोनों को एक दम पृथक-पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि उनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इस लिए मनुष्य-व्यवहार के विराट्-दर्शन ही को व्यक्तित्व कहा जा सकता है। वह अंग-प्रसंग, शरीर और आत्मा, हृदय और मस्तिष्क, आचार-विचार, आहार-विहार का वृहद् सम्मिश्रण है जिसमें मनुष्य की समष्टि के दिग्दर्शन हों और उसका सम्पूर्ण व्यवहार झलक उठे। उपर्युक्त विचार को दृष्टि में रख कर हम यों भी कह सकते हैं—"व्यक्ति की बाह्य रचना, व्यवहार की विशेषताओं, वृत्तियों, रुचियों, धारणाओं, शक्तियों, योग्यताओं और कुशलताओं का सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन ही व्यक्तित्व की परिभाषा है।"[1]

शारीरिक गठन और परिधान :

गौर वर्ण, लगभग छः फुट हृष्ट-पुष्ट ऊंचा शरीर, सुन्दर क्रियाशील, विशाल वक्षस्थल, चौड़ा और ऊंचा ललाट, भरा हुआ प्रभावशाली चेहरा, तेजोमय आंखें, आंखों पर मोटे शीशे की ऐनक, घनी बरौनियां, फ्लाई-कट मूंछें और सागर की तरह गम्भीर, ऐसे थे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी। उनके लम्बे और बड़े-बड़े कान, बारीक होंठ, लम्बे भुजदंड और भरा हुआ पेट था। छाती, पेट और पीठ पर घने और बड़े-बड़े बाल थे। हाथ और पैरों की सुन्दर लम्बी-लम्बी अंगुलियां थीं। गुलेरी जी की भरी हुई जंघाएं और सुन्दर पिंडलियां थीं। उनका सिर बहुत बड़ा था जिस पर छोटे-छोटे घने और नरम बाल शोभा देते थे। सिर पर जयपुरी गोल पगड़ी, प्राचीन शैली की तनीदार बगल-बंदी, स्वच्छ निर्मल पटलीदार धोती और पैरों में देसी चोंचदार जड़ाऊ जूती—आजीवन उनका यही परिधान रहा। माथे पर त्रिपुण्ड, गले में दुपट्टा और बगलबंदी के ऊपर बडे-बड़े रुद्राक्ष वाला कण्ठा उन्हें और भी आकर्षक और भव्य बनाते थे। जब कभी उन्हें राज-दरबार को सम्मानित करना होता तो लाल वस्त्र और हाथों में कड़े पहना करते। पहले-पहले वे कानों में सोने की बालियां भी पहनते थे। हाथों की लम्बी उंगलियों में सोने की भारी अंगूठी बहुत शोभा पाती थी। अधिकतर गुलेरी जी सफेद वस्त्र पहना करते थे जिन पर काला अंगरखा उनके भरे हुए चेहरे की आभा को द्विगणित कर देता था। अंगरखे में जेबी-घड़ी रखते थे। उनकी मुद्रा प्रभावशाली और गम्भीर थी। किन्तु अन्दर से वे अत्यन्त कोमल और तरल स्वभाव के थे। हंसते समय उनके छोटे-छोटे सुन्दर दान्त उज्जवल मोतियों की तरह दमकते। आपस में बातचीत

1. नॉरमन एल मन्न, साइकॉलाजी, प्र०सं०, पृष्ट ५६२।

करते-करते गुलेरी जी थोड़े हलकाया करते थे[1] परन्तु भाषण और अध्यापन के समय अबाध गति से बोलते चले जाते थे। उनका हकला कर बोलना बहुत ही प्यारा था।[2]

दिनचर्या और आहार :

गुलेरी जी को ब्राह्म-मुहूर्त में उठने का अभ्यास था। प्रातः उठते ही ईश्वर स्मरण करके ज़ोर-ज़ोर से अंगड़ाइयां लेते, उस समय उनकी हड्डियों के चटकने की विशेष ध्वनि होती थी।[3] स्वाध्याय आदि करके स्नान करते और फिर वे वैदिक रीति से तीन-चार घंटे संध्या करते थे। दो समय ईश्वर भजन उनके दैनिक जीवन का अपरिहार्य अंग था। पूजा पाठ से निवृत्त होकर वे छात्रावास का चक्कर लगाते और फिर अध्यापन कार्य में जुट जाते। छात्रावास, कॉलेज और क्रीड़ाक्षेत्र सभी स्थानों पर गुलेरी जी सक्रिय रहते थे। सायंकाल सन्ध्या करते और छात्रावास का फिर चक्कर लगाते। रात को देर तक अध्ययन करते रहते। गुलेरी जी नित्य व्यायाम करने के अभ्यस्त थे। उनकी दिनचर्या में एक पल भी ऐसा न बीतता जब वे अध्ययन और अनुशीलन में व्यस्त न हों। छात्रावास के प्रांगण को सजाने-संवारने में विशेष रुचि लेते थे। इसके साथ-साथ अनेक सामाजिक, साहित्यिक और अन्य सुधारक संस्थाओं में अपना सक्रिय योगदान देते थे। अतिरिक्त इसके प्रातः और सायंकाल भ्रमण करना उनके दैनिक कार्यक्रम का आवश्यक अंग थे।

उनका भोजन शुद्ध सात्विक था। मांस आदि की तो दूर रही वह लहसुन और प्याज को छूते तक नहीं थे। दुग्ध और घृत का विपुल प्रयोग करते थे। चाय बहुत कम, कभी-कभी शीतकाल में ही लिया करते। ग्रीष्म काल में पोस्त, गुलाब और प्रचुर मात्रा में काली मिर्च वाली ठण्डेई उनका मनभाता पेय था। वे यदा-कदा अपनी माता जी से कहते, "तायी जी![4] देसे

---

1. पुरोहित वंश की प्रत्येक पीढ़ी में किसी एक को हकला कर बोलने का एक सिद्ध-पुरुष का शाप था। कहते हैं कि गुलेर गांव के 'बछुए' (बावली का नाम) पर एक सिद्ध-पुरुष रहा करते थे। वे मौनी थे। पुरोहित वंश के किसी व्यक्ति ने उन्हें मुंह बनाकर चिढ़ाया। क्रोधाभिभूत सिद्ध-पुरुष ने कहा—"जा तुम्हारा वंश गूंगों का होगा।" और वह बेचारा गूंगा हो गया। यह सुन कर परिवार के सब के सब लोग सिद्ध-पुरुष से क्षमा-याचना करने लगे। बड़ी अनुनय-विनय के बाद योगी ने कहा—"अच्छा, तुम्हारे वंश की प्रत्येक पीढ़ी में एक न एक हकला कर बोला करेगा।" ऐसा हुआ भी। हकला कर बोलने का प्रमाण अब तक मिलता है।

   [पं० कीर्तिधर शर्मा से दिनांक १२-७-१९७१ ई० को गुलेर में भेंट वार्ता के आधार पर]
2. श्रीमती विद्यादेवी (गुलेरी जी की कनिष्ट भगिनी) से नगरोटा बगवां में भेंट, दिनांक १३ जून, १९६८।
3. —वही—
4. गुलेरी जी के चाचा के पुत्र—मोतीराम और रामलाल जी—उनकी माता जी को 'तायी जी' कह कर बुलाते थे उसी से सभी बच्चे अपनी माता जो को 'तायी जी' ही कहा करते थे।

म्हाली धाम बणाऽ"[1]। अपने देश वाला भोजन उन्हें बहुत पसन्द था। भोजन के अनन्तर प्रायः सभी सब्जियों को एक साथ मिला कर खाने में विशेष आनन्द लेते। पाक सम्बन्धी उनके जीवन की एक बात और स्मरणीय है कि वे अजमेर में लगभग चौदह वर्ष तक अपना भोजन स्वयं बनाते रहे। यह बात भोजन की शुद्धता को ध्यान में रखते हुए ही करते थे। भृत्य-निर्भरता उन्हें बिल्कुल नापसन्द थी। अतः भोजन बनाने आदि के विषय में वे पूर्णतया स्वावलम्बी रहे। गिलास को होंठों से न लगा कर ऊपर से धार बांध कर पानी पिया करते थे।

स्वभाव और व्यवहार :

आकार-प्रकार से गुलेरी जी जितने रौबदार लगते थे प्रकृति से उतने ही विनम्र और दयालु थे। लोक हित के लिए अपना सर्वस्व लुटाने तक को तैयार हो जाया करते। निर्धनों, विधवाओं, पंगुओं और अनाथ लोगों के तो वे पालक थे। दूसरों की सहायता के लिए वे सदैव तत्पर रहते। वह मन-मौजी और प्रसन्नचित रहने वाले व्यक्ति थे। उनकी बात-बात में हास्य की फुलझड़ी छूटती और परिहास के मीठे छींटे उड़ते रहते। दीन दुखियों की जी भर कर सहायता करते। वे अपने गांव की तीन-चार विधवाओं को गुप्त दान दिया करते थे।[2] शरणागत की बड़ी से बड़ी सहायता करने के बाद कभी याद तक न दिलाना, उनका 'नेकी कर और कुएं में डाल' वाली कहावत को चरितार्थ करती है। जब कभी कहीं बाहिर जाते तो सुपात्र और अधिकारी लोगों में खूब धन बांटा करते। निःस्वार्थ सेवा, लोकोपकार, पर-दुख कातरता, दानवीरता, और विनय की भावनाओं का गुलेरी जी के व्यक्तित्व में एक ऐसा अद्भुत समन्वय था, जैसा प्रायः नहीं मिलता। पद-प्रतिष्ठा ने उनमें अहंकार नहीं भरा बल्कि उन्हें विनय और नम्रता के गुणों से सम्पन्न कर दिया। क्रोध को तो जैसे उन्होंने जीत लिया था। वे कभी क्रुद्ध नहीं देखे गए।[3] गुलेरी जी निष्कपट और आडम्बरहीन प्रकृति के पुरुष थे।

व्यसन :

हम पहले ही कह चुके हैं कि गुलेरी जी शुद्ध शाकाहारी थे अतः किसी प्रकार का व्यसन उन्हें छू तक नहीं गया था। मांस-मदिरा की तो बात क्या वे सिग्रेट और पान तक न छूते। हां विद्याव्यसनी वे जरुर थे। उन्होंने सारा जीवन अध्ययन, अनुशीलन और अनुसंधान-कार्य में ही बिताया। यदि कहीं धार्मिक व्यवस्था देनी होती, शास्त्रार्थ का समागम होता अथवा साहित्यिक सत्संग होता तो गुलेरी जी वहां उपस्थित मिलते। बस यही उनके जीवन का सबसे बड़ा व्यसन था।

---

1. हिमाचल प्रदेश का श्रेय और प्रेम भोजन जिसमें भात, मीठे और नमकीन चावल, चार-पांच प्रकार की दालें, काला खट्टा (अखरोट जला कर), मीठा, मधरा (श्वेत चनों का) पलधा (छाछ का) आदि नाना व्यंजन बनाए जाते हैं। इसी को 'धाम' कहते हैं।
2. श्रीमती लीलादेवी जी से बी/३८, कीर्तिनगर, नई दिल्ली में दिनांक ७ जुलाई १९६९ को भेंट।
3. श्रीमती विद्यादेवी जी से (गुलेरी जी कनिष्ठ भगिनी) १३ जून, १९६८ ई० को नगरोटा (हि.प्र.) में भेंट वार्ता के आधार पर।

गुलेरी जी सुपारी खाने के शौकीन थे। प्रायः साबुत सुपारी मुंह में डाल लेते और धीरे-धीरे खाते रहते। कभी-कभी नसवार अवश्य सूँघते थे। नसवार सूँघने का उन्हें व्यसन तथा हां यदा-कदा प्रयोग अवश्य करते थे। विशेषतया इसका जमकर प्रयोग तब होता जब स्वर्गीय गौरीशंकर हीरचन्द ओझा और गुलेरी जी के मध्य साहित्य-चर्चा चलती और विचार-विमर्श हुआ करता। ऐसे अवसर पर वे सूँघनी की डिबिया पास रख लेते और ज्यों-ज्यों वार्तालाप में तीव्रता आती जाती त्यों-त्यों सूँघनी की डिबिया खाली होती जाती। इसके अतिरिक्त ताश, शतरंज आदि खेलों में उनकी तनिक रुचि न थी।

भूमि अथवा तख्तपोश पर उलटे लेट कर कभी पेट और कभी वक्ष के नीचे तकिया दबाए हुए गुलेरी जी का लेखन कार्य चलता था। लेखन कार्य के समय वे आत्म-विस्मृत हो जाया करते, जैसे कोई योगी समाधिस्थ होता है। अगर कोई व्यक्ति आता भी तो वे केवल आँख उठा कर देख-मात्र लेते और पुनः तल्लीन हो जाते। समय की पाबन्दी के वे बड़े कायल थे। जो कार्य जब होना चाहिए, होकर रहता था। उनकी इस समय-निष्ठा में कोई बाधा नहीं डाल सकता था। इस नियम बद्धता और संतुलनात्म दृष्टिकोण ने उन्हें पूर्ण व्यवस्थित जीवन बताने की क्षमता प्रदान की। वह प्रतिदिन दैनंदिनी लिखने के अभ्यस्त थे और मजाल है कि एक-एक पैसे का हिसाब उनकी डायरी पर न चला जाए। सौभाग्य से उनकी निजी कई डायरियां लेखक को उपलब्ध हुई हैं। डायरी का एक-एक पृष्ठ उनका मृत्यु-पर्यन्त व्यवस्थित रहने का साक्षी है।[1] अपने महाप्रयाण

---

1. डायरी का एक पृष्ठ :

×		
×		
×		
29	× × ×	1-0-0
30	Maya	0-8-0
	Durga	0-2-0
	Sweet	1-10-0
	Ekka	0-3-0
31	Ekka	0-8-0
	× × ×	0-4-0
	Ekka	0-6-0
SEPTEMBER		
1	Ekka	1-0-0
	Wire	1-9-0
	Regd.	0-2-0
	Leader	3-15-0
2	Ekka	1-0-0
	Post Card	1-1-0
	Baret died	
	Postage Lalji	1-5-0
3	×	
4	Wire	1-0-0
5	Ekka	1-0-0
	Girija Bajpai	4-0-0
	Wire	1-4-0
	Postage	0-12-0

[गुलेरी जी का देहान्त १२ सितम्बर को हुआ और उन्होंने ५ सितम्बर तक नियमित रूप से हिसाब-किताब डायरी में लिखा। देखिए गुलेरी जी की निजी डायरी पृष्ठ २३१]

से छ: सात दिन पूर्व तक उन्होंने अपने दैनिक कार्यों में किसी प्रकार की ढील न आने दी। १२ सितम्बर, १९२२ को प्रात: चार बजे उनका देहान्त हुआ था और ५ सितम्बर, १९२२ तक उन्होंने एक-एक पैसे का हिसाब-किताब दैनंदिनी में दर्ज किया है।

संग्रह-प्रवृत्ति :

गुलेरी जी वस्तुओं को संभाल कर रखने में कमाल करते थे। वे बड़े व्यवस्था सम्पन्न संग्राहक रहे हैं, इसका ज्ञान उनकी पुरानी फाइलों और कागज-पत्रों से होता है। उन्होंने अपनी शैक्षणिक-योग्यताओं के प्रमाण-पत्र इतनी सतर्कता और सावधानी से एक फाइल में संभाल कर रखे हुए हैं कि अर्द्ध-शताब्दी से भी दो दो दशक ऊपर बीतने पर वे बिल्कुल वैसे के वैसे हैं। इस फाइल का ऊपरी कवर इतना मोटा और पुख्ता है कि दबाओ तो दबे नहीं मोड़ो तो मुड़े नहीं। इसी प्रकार कुछ फाइलों में तात्कालिक पत्र-पत्रिकाओं में विशेषकर 'सरस्वती में प्रकाशित साहित्यिक, ऐतिहासिक धार्मिक, राजनैतिक और कला-सम्बन्धी महत्व के अनेक चित्र मिलेंगे। अन्य में सुन्दर लेख, सूचनाएं और प्रसंग आदि संगृहीत हैं। एक फाइल उनकी सरकारी-सेवा-विषयक पत्र-व्यवहार पर पत्र-व्यवहार और ढेरों तार सलग्न हैं। उनका निजी पुस्तकालय देश विदेशों के विविध विषयक अनेक ग्रन्थों से अलंकृत था। उन्होंने अपने पुस्तकालय की अपने नाम से एक गोल मुहर भी बनवा रखी थी, जिसमें पुस्तक संख्या और तिथि आदि का विधान रहा करता था। अनेक निजी डायरियों से भी उनकी इस व्यवस्था बुद्धि के दर्शन होते हैं। उनकी तीन अलमारी दान की ही पुस्तकों का वैदिक पुस्तकालय अजमेर में अपूर्व संग्रह है।[1] इनमें से भिन्न-भिन्न स्थानों से कई ग्रन्थ समालोचनार्थ भेंट में प्राप्त हुए थे। इन पुस्तकों में वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, दर्शन-शास्त्र और भाषा-विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें उल्लेख्य हैं। देश-विदेश के प्रसिद्ध विद्वान-साहित्यिकों और सामाजिक एवं कला-विषयक संस्थाओं के संचित असंख्य पत्रों से उनकी उक्त प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। इस संदर्भ में एक बात कहनी आवश्यक प्रतीत होती है कि गुलेरी जी साहित्यिक-संचय में जितने विशाल हृदयी मिलते हैं उनका आर्थिक संचय-पक्ष उतना ही दुर्बल है। यह बात नहीं कि वे धन-संग्रह कर नहीं सकते थे, चाहते तो सब कुछ कर सकते थे परन्तु उनकी अपरिग्रह और अकारण अहैतुकी भावना ने उन्हें इस ओर से उदासीन बना दिया था। अजमेर प्रवास-काल में परिस्थितिवश उन्हें एक मकान खरीदना था और वह भी दो भागीदारों के साथ मिलकर। वे रुपये की याचना करते हुए बाई जी लाल को लिखते हैं, "× × × श्रीमती से आज एक प्रार्थना करता हूं। श्रीमती ने कई बार मुझ से पूछा कि मेरी आर्थिक अवस्था कैसी है और मेरे ऊपर ऋण कितना है इत्यादि, किन्तु मैंने उत्तर नहीं दिया। मेरा विचार कभी श्रीमती से आर्थिक सहायता लेने का नहीं है, न था। परमेश्वर योगक्षेत्र के निर्वाह लायक दे देता है, बचा नहीं सकता। बीमारी और डाक्टर न हों तो यह भी हो सके। भवतु। इस समय एक प्रस्ताव करता हूं कि (१) आप मुझे

---

1. वैदिक पुस्तकालय में सभी अस्त व्यस्त पुस्तकों को व्यवस्थित करने और पुस्तकालय का पुनर्गठन करने में डा० भवानीलाल भारतीय, प्राध्यापक राजकीय कालेज, अजमेर का सराहनीय योगदान है। इन्होंने बड़े श्रम से गुलेरी जी द्वारा दान दी गई सभी पुस्तकों को क्रमानुसार व्यवस्थित करके तीन अल्मारियों में एकत्र किया है।

पांच हजार रुपया उधार दीजिए (२) मैं ता० 25 जनवरी तक १५०० तो श्रीमती को वापिस कर दूंगा जो मेरा इधर-उधर जमा है। (३) पीछे प्रतिमास १०० रुपया श्रीमती को देता जाऊंगा जब तक कि रुपया न चुक जाए। (४) सूद मैं नहीं दे सकता। सूद दे सकता तो श्रीमती को कह न देता। (५) यह प्रबन्ध ता० २० तक होना चाहिए। (६) यदि श्रीमती ५००० रुपये न दे सकें तो २५०० रुपये ही दे दें। रत्नशाह तथा मैं आधा-आधा हिस्सा कर लेंगे। किन्तु झंझट रहेगा। अच्छा तो यही हो कि मैं सारा ले लूं। (७) २५०० रुपये की अदाई का भी वही क्रय रहेगा जो ऊपर (५) और (३) में कहा गया है।''

उनमें स्वाभिमान और आत्म-निर्भरता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी किन्तु आवश्यकता मनुष्य को विवश कर देती है। इधर-उधर हाथ पैर बहुतेरे मारे, दिमागी कसरत भी खूब की गई कि उनके पास कौन-सी सम्पत्ति है जिससे धन प्राप्त हो सके। पत्नी तक के गहनों का भी अनुमान लग गया पर जब बात न बन सकी तभी मांगना पड़ा :—

"× × × मैं नहीं जानता कि श्रीमती के पास रुपया है या नहीं, तथा यह भी नहीं कह सकता कि श्रीमती यों रुपया लगाना चाहेगी या नहीं ? मेरे पास गहना (मेरी स्त्री का) इतना नहीं है कि उस पर पांच क्या दो हजार भी मिल सके। कुछ ऋण भी है। मेरे मन में जो आया वह श्रीमती को लिख दिया। यदि हो जाए तो घर से बाहिर निकाले जाने की चिन्ता हट जाए। किसी पर व्यर्थ बोझा बनना भी उन्हें नापसन्द था: और फिर आहार-व्यवहार में वे स्पष्टवादिता के पक्षपाती थे ही। आगे लिखते हैं" :—

"......—जो भाव हृदय में उठा वह श्रीमती को कह दिया। × × × गुरु और शुक्रवार को विचार कर शनि को मुझे तार दे दें कि हां या ना, तार या तो दीजिए—'येस, आल या येस हाफ या नो।' जिससे मैं शनिवार को रत्नशाह जी को कह सकूं। उस दिन वे चले जाएंगे। इस परिश्रम के लिए क्षमा करें। श्रीमती पर कोई बोझ या अहसान नहीं है। व्यवहार की बात है, संभव न हो तो 'नहीं' कह दीजिए, संभव हो तो मुझे इस चिन्ता से निर्भय कर दीजिए। ...... श्रीमती के सामने दस्तावेज की जरूरत नहीं। मेरा हृदय और शरीर ही दस्तावेज है।[1]

और जब रुपया मिला तो मकान अपने नाम खरीदने की बजाए रत्नशाह के नाम करवा दिया। क्योंकि उन्होंने सोचा कि रत्नशाह के पास तो मकान ही नहीं है और उनके पास गुलेर में है।

पितृ भक्ति और गुरु भक्ति :

गुलेरी जी एक पारिवारिक व्यक्ति थे। उनकी स्नेह-प्रकृति और आत्ममीयता आदि गुणों ने उन्हें परिवार का सर्वप्रिय व्यक्ति बना दिया था। वे आदर्श-पुत्र थे। अपने माता-पिता के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। बचपन में संस्कृत का स्तोत्र पाठ और धार्मिक श्लोकों का ज्ञान उन्हें अपनी माता जी से मिला था। कुछ बड़ा होने पर उन्होंने अपने पिता जी से संस्कृत पढ़ी। संस्कृत के धुरन्धर विद्वान अपने पिता से वह बहुत प्रभावित थे। पिता का विद्यार्थी जीवन तो उनके लिए प्रकाश स्तम्भ के समान था। यह बात बेधड़क कही जा सकती है कि गुलेरी जी ने अपने पिता के

1. राजमाता प्रतापगढ़ श्रीमती चन्द्रकुमारी को लिखे गुलेरी जी के पत्र का अंश।

विद्यार्थी जीवन, उनकी प्रगाढ़-विद्वता और संस्कृत-निष्ठ विनय और नम्रता को अपने जीवन में उतार लिया था। तृतीय विवाह का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते वे माता-पिता के चेहते थे। परन्तु यह लाड़-प्यार उनको सच्चरित्र बनाने, अनुशासित करने और ज्ञान प्राप्ति में कभी बाधक न बना। परिणामतया उनकी नैसर्गिक भावुकता ने उन्हें अपने माता-पिता का सच्चा सेवक और श्रद्धालु-भक्त बना दिया। वे अपने पिता जी के विषय में एक स्थान पर लिखते हैं—"यह मेरा सौभाग्य था जिसे महान् संस्कृतज्ञ पिता शिक्षक के रूप में मिले, जिनसे मैंने स्वच्छन्द रूप में कई वर्षों तक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।"[1] पितृ भक्ति में गुलेरी जी के आदर्श भगवान राम थे। माता-पिता को लेटकर-साष्टांग प्रणाम करता हूं।[2] इस प्रकार के अनन्य श्रद्धा के उदाहरण ढूंढे से मिलते हैं। साधारतया पुत्र की पितृ-भक्ति का वर्णन करते समय हम कहते हैं—"अमुक तो अपने माता-पिता की पूजा करता हैं।" यह बात एक कहावत-सी होकर रह गई हैं। परन्तु हमारे चरित नायक गुलेरी जी अपने पिता की सचमुच पूजा किया करते थे। पिता के स्वर्ग सिधारने के पश्चात पूजा गुप्त-रूप से षोड़षोपचार विधि से होती थी। पिता जी का एक बड़ा चित्र उनके पूजा के कमरे में रखा रहता था।[3] परन्तु इस बात का किसी को भी पता न था कि पितृ-भक्त और गुरू-भक्त गुलेरी प्रतिदिन ध्यानावस्थित होकर अपने पिता की सचमुच पूजा करते हैं। इस विषय में उनके गुरू भाई श्री रघुनन्दन प्रसाद लिखते हैं:—"स्वच्छ संगमरमर की बनी सुन्दर सीढियों पर चढ़कर जब मैं उनके कमरे में पहुंचा, तो अन्दर की कोठरी का दरवाजा थोड़ा सा खुला था। उसमें से धूप की सुगन्ध आ रही थी। मैं यह देखकर अवाक् रह गया कि षोड़षोपचार विधि से श्री गुलेरी जी अपने पूज्य पिता के चित्र की पूजा कर रहे थे। वे ध्यानमग्न थे, नेत्र बन्द थे और कपोलों पर अश्रु-प्रवाह था। उस पितृ-भक्ति और गुरूभक्ति को देखकर मैं मुग्ध रह गया। श्री गुलेरी जी की वह झांकी भी मेरे मन में बस गई है। यह पूजा गुप्त रूप से हुआ करती थी। कोई भी इसका साक्षी नहीं हुआ करता था। मुझे ही इसको देखने का सौभाग्य मिल गया और यह भेद अपने हृदय में सदा छिपाये रखा। श्री गुलेरी जी को भी नहीं मालूम होने दिया कि मैं उनकी पूजा विधि देख चुका हूं।"[4] ऐसी थी उनकी पितृभक्ति और गुरूभक्ति।

जब गुलेरी जी के पिता का देहांत हुआ तो वे अजमेर से जयपुर पहुंचे और अपने मृतक पिता की तीन बार परिक्रमा की, जैसे हम लोग देवताओं की करते हैं, और भाव-विभोर होकर

---

1. 'I had the rare good fortune of having such a distinguished Sankrit Scholar as my father and teacher and studied Sanskrit independently for a number of years under him.

   [देखिए : मेयो कॉलिज अजमेर में गुलेरी जी की पर्सनल फाइल में लगे प्रार्थना-पत्र से संलग्न व्याख्यापक-परिचय, दिनांक २९-४-१९१६।]

2. गुलेरी जी की कनिष्ट भगिनी श्रीमती विद्यादेवी जी से नगरोटा बगवां (हिमाचल प्रदेश) में, दिनांक १३ जून १९६८ ई० को भेंट।
3. गुलेरी जी के पिता का यह चित्र अभी भी उनके घर गुलेर (हिमाचल प्रदेश) में सुरक्षित है।
4. देखिए धर्मयुग, १२ जुलाई सन् १९६४ ई०, रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, उसने कहा था के अमर लेखक गुलेरी जी मेरे गुरू भाई थे, पृष्ठ ३३।

प्रणाम किया। रोती आवाज में केवल यही कहा—"मुझे उनके बीमारी का पत्र तक न मिला।" पिता की मृत्यु की सूचना उन्होंने एक संस्कृत कविता द्वारा दी थी। गुलेरी जी विरचित इस कविता से भी उनकी पितृभक्ति का परिचय मिलता है।[1]

आदर्श भ्राता :

गुलेरी जी अपने भाई-बहिनों से भी बहुत प्रेम करते थे। उन्हें सभी भाई-बहिन 'बड़ा भाऊ'. या ज्येष्ट कहकर पुकारते थें। वे सोमदेव जी को 'मध्यम', जगद्धर को 'गैंईं' और विद्या देवी को 'भैं-भैं' करके बुलाते थे। बहन को यह नाम इसलिए दिया था कि वह बचपन में हर समय रोती रहती थी। एक बार जब वे एक दिवार को घोड़ा बनाकर खेल रहे थे तो विद्यादेवी दीवार से गिर जाने से नीचे दब गईं। प्रयत्न करने पर भी जब वे बहिन को न निकाल सके तो भयभीत होकर पिता को बुला लाए। उस दिन विद्यादेवी मरते-मरते बची थीं।

गुलेरी जी और सोमदेव जी का एक दूसरे से अपूर्व स्नेह था। यहां उसी संदर्भ में एक अद्भुत घटना का उल्लेख करते हैं। सोमदेव जी के देहान्त के पश्चात गुलेरी जी विरक्त और व्यथित रहा करते थे। जब वे अपनी भावज की अन्त्येष्टि में गये थे तो उन्हें अपने मृतक भ्राता सोमदेव की आवाज सुनाई दी थी—'ज्येष्ठ ! क्या देख रहे हो ? अब आप भी चले आओ।' इससे ठीक सोलह दिन बाद गुलेरी जी का महाप्रमाण हुआ।

---

1. (रैणा राधाकृष्ण हरिपुर निवासी को भेजा गया पत्र)

ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति
त्रैंगर्त भूप कुल मान्य पुरोहितानां,
मूर्द्धा प्रसिद्धमणि वत्कुल मौलि रत्नम्।
वाराणसेचबुध वन्दित शास्त्रसम्पन्यत्स्य,
प्रदेश नृपपूजित पाद पद्म:।।
अध्याप्य सर्व शास्त्राणि ब्रह्मविधे परापरे।
छात्रान् सहस्रश: श्री १०८ ल शिवराम महायश:।।
आप्तकाम: सत्यकामो मुक्तकर्म फलस्पृह:।
चतुर्मुद्रतरो लोकात्सुकर्मा भूरि दक्षिणा:।।
मार्गासित चतुर्दशयां पराण्ह बुधवासरे,
जीर्ण वास स्तुनं त्यक्त्वा ब्रह्ममयम वाप्तयान्।
विलपन्त:
चन्द्रधर – सोमदेव – जगद्धर – योगेश्वरा:
मार्ग २ सं ६७
जयपुर

श्लोक के दोनों ओर लिखा है :— 'अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि'
'तरति शोकमात्मवित्'।

सबके दुख में दुखी और सबके सुख में सुखी होने वाले गुलेरी अपने सुख में सबको भागीदार समझते थे। क्योंकि "सुख सबके भाग्यों से है"—यह उनका दर्शन था। अपने चचेरे भाई रामलाल जी[1] को पत्र में लिखते हैं:—"आपके आशीर्वाद से कोई शुभ समाचार होगा तो आपको अवश्य सुनाऊंगा। क्योंकि दुःख मेरे कर्मों का है और सुख आप सबके भाग्यों से है।" अपने गांव गुलेर से वहां के लोगों और जनजीवन से उन्हें इतना लगाव था कि जहां उन्होंने अपनी कहानियों की कथावस्तु का अत्याधिक अंश वहां से लिया है वहां जयपुर में जन्म लेकर भी मानसिक रूप से गुलेर को अपनी जन्मभूमि मानते थे। उपर्युक्त पत्र में आगे लिखते हैं:— "अस्तु आज श्री परमेश्वर ने श्री 'महाराज'[2] के तपोबल से एक हर्ष समाचार सुनाया है जिसको आपके द्वारा अपनी जन्मभूमि के चरणों में रखता हूं। आप दोनों को तथा चाची जी को बधाई।"[3] इस स्वाभाविक आकर्षण ने गुलेरी जी को सभी का प्रिय बना दिया था। बड़े होकर भी अपने बहिन-भाईयों के साथ बिल्कुल बच्चों जैसे खेल में डूब जाया करते थे। वे अपने सिर पर कभी हाथ न रखने देते थे। उन्हें खिझाने के लिए उनकी बहिन उनके सिर पर बार-बार हाथ रखने की धृष्टता करती परन्तु गुलेरी जी हर बार झुंझला कर उनका हाथ हटा देते और खिलखिला कर हंस पड़ते।

---

1. लेखक के पितामह।
2. गुलेरी जी के पिता श्री शिवराम जी को सभी महाराज कहकर बुलाते थे।
3. देखिए: श्री रामलाल जी के नाम लिखा पत्र, दिनांक अजमेर २५-९-१९१७।

—डा० पीयूश गुलेरी
सिविल लाईस, धर्मशाला

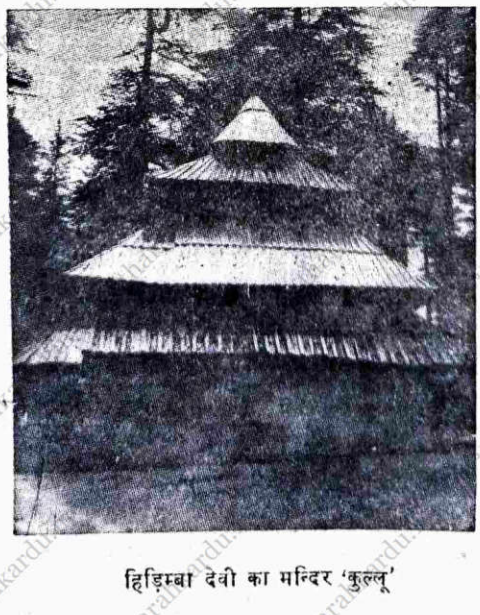

हिड़िम्बा देवी का मन्दिर 'कुल्लू'

कांगड़ा घाटी में जगराता

–रमेश चन्द्र 'मस्ताना'

कांगड़ा घाटी के आंचल में कई ऐसे लोक-सांस्कृतिक तत्व छुपे हुए हैं जिनका आज यहां पर काफी प्रचलन है। परन्तु वह एक मात्र या तो मनोरंजन के साधन मात्र बन कर रह गये हैं या फिर सुख-स्मृद्धि की कामना मात्र। इन्हीं लोक-सांस्कृतिक तत्वों में से एक यहां पर गाया जाने वाला जगराता भी है। जगराते में एक गायक मंडली को बुलाया जाता है और वह अपने तालों के साथ जैसे ढोलक, चिमटा, घड़े पर रखी थाली जिसे कड़े से बजाते हैं, छैणे और रौलू (विदुषक) के हाथ में फटे बांस का डडा विशेष शोभा देता है। इन तालों के साथ वह दो हिस्सों में बट जाते हैं। गायक मंडली का नायक जिसे 'बेदक' कहा जाता है, एक चौकी पर रंगीन कागज़ों का मन्दिर बनाता है जिसमें देवी की मूर्ति सजा कर रखी जाती है और फिर माता की परम भक्तिन तारा रानी की कथा गा-गा कर सुनाई जाती है।

कांगड़ा घाटी ही इस जगराते की जन्मभूमि है। सर्व प्रथम देवी का स्थान गढ़ काश्मीर था और लगड़वीर नाम का इसका परम भगत था। एक दिन देवी की भेंट एक भगत ध्यानूं से हो गई। और अपने को कृत-कृत्य मानते हुए ध्यानूं ने देवी के खण्डे (तलवार) से अपनी गर्दन काट कर देवी को अर्पण कर दी। लगड़वीर ऐसा देख कर डर गया और देवी से कहा कि एक तो भगत मिला उसका ही सिर ले लिया, यह ठीक नहीं। तभी देवी ने अपनी शक्ति से उसका सिर धड़ के साथ लगा दिया।

कुछ समय बाद ध्यानूं को देवी ने स्वप्न में कहा मुझे गढ़ काश्मीर से पांडवों के पास पहुंचा दो। निश्चित स्थान पर पहुंच कर ध्यानूं देवी को डोले में बिठा कर ले आया और आकर पांडवों को इसकी सूचना दी। परन्तु पांडव जुए में बैठे हुए थे, उन्होंने कोई परवाह नहीं की। तीसरी बार बुलाने पर जब पांडव न आए तो देवी ने श्राप दे दिया कि तुम जुए में हार जाओगे। पांडव जुए में हार गये और कौरवों ने उन्हें १३ वर्ष का बनवास दे दिया। साथ में यह भी कहा कि यदि १३वें वर्ष दिखाई पड़ जाओगे तो पुन: बनवास हो जायेगा।

बनवास होने पर उन्हें देवी की याद आई, और जब १२ वर्ष बीत गए तो मनौतियां करने लगे कि ऐ देवी! अब बचा लो, हमसे भूल हो गई है। देवी प्रसन्न हो गई और उनका बनवास पूरा हो गया। तब देवी ने उन्हें एक भवन (मन्दिर) बनाने का आदेश दिया। पांडवों ने खुशी-खुशी काम शुरू कर दिया। परन्तु दिन को जितना काम करते, रात को राक्षस सब चौपट कर देते। अन्त में हार कर उन्होंने देवी से निवेदन किया। देवी रात को सुन्दर कन्या के रूप में रुआंसी सी वहां जा बैठी। राक्षस आए तो उन्होंने बैठने का कारण पूछा। देवी ने कहा कि मैं बहुत दुखी हूं। राक्षसों ने कहा कि चलो! हम अपने राजा से आपका विवाह करवा देते हैं। परन्तु देवी ने कहा

कि जो मुझसे लड़ कर जीतेगा, उसी से विवाह करूंगी । राक्षस तैयार हो गये । लड़ाई में वे अपने राजा को साथ नहीं लाए क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं राजा से इसकी शादी न हो जाये तो हम यूँ ही रह जायेंगे । युद्ध हुआ और देवी ने एक-एक को धाराशायी कर दिया । युद्ध में उसके पसीने की दो बून्दें जमीन पर गिरी जिससे सुनार और सुन्यार (चार्ज) दो व्यक्ति पैदा हुए ।

देवी ने पहले सुनार को राक्षसों के राजा को मार कर लाने को कहा । सुनार गया और सोये हुए राजा की हथेली पर कच्चे रंग से सुनेहरी अक्षर बना दिए । जब राजा उठा तो उन्हें देख कर हैरान रह गया, और कहा कि जो इन्हें पक्के रंग में रंग के बना देगा उसे आधा राज्य दे दूँगा । सुनार ने एक शर्त रखी कि पहले आपको आग पर तपाऊंगा फिर अक्षर बनाऊंगा । राजा मान गया और सुनार उसे लकड़ियों की चिता पर तपाने लगा । चिता में आग लगते ही सुनार ने एक दम सुहागे को उसके सिर के इलावा सारे शरीर पर फैंका जिससे सारा शरीर जल गया और सिर को एक दम काट कर ले आया । जो भी सोना चांदी उसके हाथ लगा उसमें से आधा रास्ते में ही छुपा दिया और शेष सिर सहित देवी के हवाले कर दिया । परन्तु देवी को सब पता चल गया और उसे श्राप दिया कि तू कमायेगा जरूर पर उसमें बढ़ौतरी नहीं होगी । पुनः सुन्यार को भेजा और उसने राजा की चिता को धोया और जो कुछ भी मिला वह देवी के हवाले कर दिया । अतः देवी ने प्रसन्न होकर उसे यह वरदान दिया कि तुम्हारी इसी कमाई में बहुत बढ़ौतरी होगी । सुनार द्वारा लाये गये सिर में से राक्षस का कान काट कर भवन की नींव में गाड़ा गया, और तब पांडवों द्वारा नगरकोट अर्थात् कांगड़ा में भवन (मन्दिर) बन कर तैयार हुआ । कान के गाड़ने के कारण ही इसका नाम कानगढ़ पड़ा जो बाद में बदलता हुआ अब कांगड़ा बन गया है ।

जब भवन बन कर तैयार हो गया तो पांचों पांडवों ने उसके गान के लिए एक दिन निश्चित किया । भीमसेन सब को निमन्त्रण देने के लिए गया । रास्ते में उसे एक ढ्वरांसरां ऋषि मिला, जिसे एक गाय के मारने के अपराध में गांव वालों ने अलग कर दिया था । उसने कहा कि केवल मुझे ही बुलाओ बाकी गांव वालों को बुलाने से क्या लाभ । परन्तु पांडवों के न बुलाने पर वह रुष्ट हो गया और उसने गान में विघ्न डालने की सोची । गान वाले दिन उसने एक पक्षी का रूप धारण कर मरे हुए सांप को उठा कर उस कड़ाही में डाल दिया जिसमें कि प्रशाद का हलवा पांडवों ने बनाया था । यह सब दिवार से एक छिपकली ने देखा । छिपकली वास्तव में देवी की भक्तिन तारा की बहिन सितारा थी । इसके छिपकली बनने की भी एक गाथा है :

"कि तारा और सितारा इन्द्र के महल में नाचा करती थीं । एक बार राजा हरिश्चन्द्र ने अपने तब्ला वादन और ३६ रागों द्वारा इन्द्र राजा को प्रसन्न कर दिया और वरदान में यह दोनों बहनें मांग लीं । इन्द्र राजा ने तो इन्हें दे दिया पर इन्होंने हरिश्चन्द्र को कहा कि हम आपको मातर लोक में मिलेंगी । वहां आप तालाब बनवाओ, हम वहां स्नान करने आयेंगी । एक दिन दोनों ने पूर्णिमा का व्रत रखा हुआ था और तारा ने सितारा को बाजार भेजा कि जाओ और एक टके का फ्लार और एक टके का फूलों का हार लेकर आओ । परन्तु जब सितारा बाजार में पहुंची तो एक होटल के अन्दर से मांस की खुशबू उसे अन्दर ले गई । वह सब कुछ भूल गई और फ्लार के स्थान पर मांस ले लिया । थोड़ा सा रास्ते में खाया और शेष घर ले आई । तारा ने क्रोध से उसे श्राप दे दिया कि जा तू अब नीच कुल में जन्म लेगी । इसी नोक झोंक में वह इन्द्र राजा की कचहरी में

देरी से पहुंची और इन्द्र राजा ने दण्ड हेतु कहा कि जाओ और मातर लोक में पृथ्वी का चक्कर काट कर आओ। चक्कर काटते-काटते उन्हें पसीना आ गया और वहां वह नहाने के लिए तालाब में उतर गई। वहां राजा हरिश्चन्द्र उनका इन्तजार कर रहा था। उसने उन्हें पकड़ लिया। तब तारा ने कहा कि अपने नाम का शहर बसाओ फिर मिलूंगी। राजा ने हरिपुर नामक शहर बसाया और तारा ने उससे शादी कर ली, और फिर उसकी बहन सितारा तारा के श्राप के अनुसार छिपकली बनी।"

छिपकली ने जब देखा तो सोचा कि क्यों न अपनी जान देकर सबको बचा लिया जाए। इतना सोचकर दिवार से छलांग लगाई और कड़ांई में आकर मर गई। पांड़वों ने उसे फिर श्राप दे दिया कि तु फिर नीच कुल में जाएगी। परन्तु ज्यों ही हलवे को गढ़े में पल्टा गया तो जो वहां एक मरा सांप निकला। उन्हें अपनी गल्ती का आभास हुआ और अपना श्राप वापिस लेकर वरदान दिया कि तु उच्चकुल में जन्म लेगी।

फिर पांडवों ने देवी का गायन जगराते के रूप में किया और मन्दिर में देवी की मूर्ति की प्रतीष्ठा की।

तारा और सितारा की लोक-गाथा आगे इस प्रकार है कि पांडवों के वरदान के अनुसार छिपकली अर्थात सितारा का जन्म राजा स्पर्श के घर हुआ। परन्तु तारा के श्राप से कि तू सदा नीच कुल में रहेगी—साथ था। जन्म के बाद पण्डितों ने जब वेद विचार किया तो राजा को कहा कि यह अशुभ है और इसका परित्याग कर दो। राजा उसे मारने लगा। पर पण्डितों के कहने पर एक सोने की पेटी बनवा कर उसमें बन्द करके नदी में बहा दिया। एक साधु ब्राह्मण ने उस पेटी को देखा और पकड़ने लगा, परन्तु वह उसके हाथ न आ रही थी। तभी वहां एक भंगी कूड़ा फैंकने आया था, उससे साधु ने कहा कि इसे पकड़ो और अन्दर जो कुछ होगा वह आप ले लेना और बाहर की पेटी मैं ले लूंगा। भंगी मान गया और ज्यों ही भंगी ने पेटी की ओर हाथ बढ़ाया वह उसके हाथ में आ गई।

वचनानुसार साधू ने पेटी ली और कन्या को भंगी ने ले लिया। घर पर जाकर उसने कन्या का नाम रुकमणी रखा। सोलह वर्ष की होने पर उसकी शादी कलुआ भंगी से कर दी गई। रुकमणी की सास तारा रानी के महल में झाड़ू लगाने जाती थी। बाद में वह पुत्रवधु अर्थात् रुकमणी को महल में झाड़ू लगाने के लिए ले गई और कहा कि अब तू यह काम सम्भाल। रुकमणी जाकर झाड़ू लगाने लगी तो तारा ने उसे पहचान लिया और उसे झाड़ू लगाने से इन्कार कर दिया। रुकमणी के पूछने पर उसने उसे सब कुछ बता दिया। तारा ने उसे उस कमरे में झाड़ू लगाने को कहा जिसमें देवी की मूर्ति रखी थी। देवी से उसने पुत्र हेतु प्रार्थना की। देवी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और कुछ दिनों के बाद उसके घर एक पुत्र पैदा हुआ। परन्तु वह देवी को जगराता देना भूल गई। लड़का बीमार हो गया। तब तारा ने उसे कहा कि तू अपना वचन भूल गई है। रुकमणी को अपनी गल्ती का आभास हुआ और उसने देवी को जगराता देना मान लिया। परन्तु कठिनाई यह हुई कि भगत जन तो उसके घर आयेंगे नहीं। परन्तु तारा ने कहा कि मैं सब को निमन्त्रण दूंगी और स्वयं भी चलूंगी। तारा के निमन्त्रण पर सब भक्त जन जाने

को तैयार हो गए। यह बात एक नाई ने सुन ली और राजा से कह दी। राजा ने नाई से पूछा कि अब इसके रोकने का कोई उपाय भी लाओ। नाई ने कहा कि रात को ही बताऊंगा।

रात को राजा की अंगुली नाई ने उस्तरे से काट दी और उसमें नमक लगा दिया। तब राजा की नींद हराम और रानी राजा को सुलाने में प्रयत्नशील कि कब राजा सोये और मैं जगराते में जाऊं। परन्तु राजा को नींद कहां? तारा परेशान और उधर जब देवी ने तारा को आता न देखा तो स्वयं ही आई और आते ही राजा को सुला दिया, और दोनों चली गईं। सुबह जब राजा की नींद खुली तो राजा ने देखा कि रानी नहीं है। तो वह सीधा भंगी बस्ती की ओर गया और वहां रानी को भंगिन के साथ भोजन करते देखा। ज्यों ही रानी बाहर निकली तो राजा ने उसे पकड़ लिया और सब कारण जानना चाहा।

रानी ने कहा—राजा! बात बहुत दूर है। यदि जानना चाहते हो तो महल में जो तोता मैना हैं उन्हें मार कर लाओ, फिर बताऊंगी। राजा ने वैसा किया। परन्तु फिर रानी ने कहा—तबेले में जो घोड़ा बन्धा है, उसे मार कर लाओ। राजा ने घोड़ा भी मार कर ला दिया। फिर भी रानी ने बात नहीं बताई और कहा कि अब पुत्र को मार कर लाओ और उसके मांस को पकाओ फिर बताऊंगी। राजा को हार कर यह भी करना पड़ा। रानी ने धूप व जोतों के ऊपर मांस को उबाला और राजा को कहा कि अब इसे पांच बर्तनों में परोस कर ढक दो।

तभी देवी शक्ति से तोता मैना, घोड़ा और लड़का तीनों को रानी ने जीवित कर दिया। और राजा को कहा कि अब एक-एक बर्तन सभी के सामने रख दो। ज्यों ही बर्तनों के ढक्कन हटाये गये तो उनमें से तोता मैना वाले बर्तन में खिल्ल बताशे, घोड़े वाले बर्तन में चने, लड़के वाला हटाया तो हलवा, रानी वाला हटाया तो सात फल और राजा वाला हटाया तो उसमें कीड़े ही कीड़े निकले। तब रानी ने कहा कि यह सब देवी की ही शक्ति है। अतः एक मन्दिर बनवाओ और नित्य इसकी पूजा किया करेंगे।

इस लिए कांगड़ा घाटी के लोग इस जगराते को अपनी किसी मनोकामना के पूर्ण होने पर करवाते हैं। जिसमें देवी की पूजा की जाती है और तारा रानी की कथा गा-गा कर सुनाई जाती है। कांगड़ा माता की भेंट भी गाई जाती है। रात के समय वही चीजें जो देवी ने बर्तनों में बना कर रखी थीं—हलवा, चने, खिल्ल-बताशे आदि बांटे जाते हैं। सुबह दर्शक गण माता के चरणों में मनचाही भेंट चढ़ा कर घरों को जाते हैं।

उप शाखा सचिव,
कांगड़ा लोक-साहित्य परिषद नेरटी,
गांव व डाकघर नेरटी वाया रैत,
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश।

—:००:—

कहलूर की जुब्बा–प्रथा

–हुकम सिंह ठाकुर

बात अब की नहीं लेकिन लगभग एक सदी पुरानी है। उस समय हिमाचल का वर्तमान जिला बिलासपुर कहलूर नाम से जाना जाता था। भारत का अधिकांश भाग फिरंगियों के अधीन हो चुका था। फिर भी शेष भाग में छोटे बड़े सैंकड़ों राजतन्त्र थे। विशेषतः भारतवर्ष के उत्तरी भाग में बहुत से छोटे-छोटे पहाड़ी राजा थे। साधारणतयः दो ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की टेकरियों या दो नदियों के मध्य ही इनका राज्य सीमित होता था। विज्ञान बहुत पीछे था। आवागमन के साधन दुर्लभ थे। कल, कारखाने नाम मात्र के थे। ये छोटे-छोटे राजा निरंकुश शासक थे। वर्तमान काल को देखते हुए ये छोटे-छोटे पहाड़ी रियासतों के राजा कूप-मण्डूक के समान थे। लेकिन वैदिक आर्यों की परम्परा पर चलने वाले इन राजाओं का पद सर्वोच्च था। कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधान-पालिका तीनों की शक्तियां इनमें नीहित थीं। ये प्रसन्न मुद्रा में किसी को हजारों रुपये की जागीरें भी एक क्षण में दे देते थे और दूसरे ही क्षण किसी पर क्रुद्ध हो कर उसके सारे परिवार को उबलते तेल के कड़ाहे में भी डलवा देते थे। देश में इस प्रकार चापलूसी जी-हजूरी चरम सीमा पर थी। लेकिन ऐसा भी पाया गया है कि राजा उस काल में तेजस्वी, धर्म प्रिय व न्याय प्रिय होते थे लेकिन चापलूस लोग उनसे अन्याय व अधर्म के काम भी करवा देते थे।

उस काल में कहलूर (वर्तमान जिला बिलासपुर) में राजा हीराचन्द का राज्य था। ये चन्देल वंशीय थे। उसी समय में गुग्गा-गेहड़वीं के पास ही गढ़वालीय ब्राह्मणों का एक गांव था। किसी समय में प्रसन्न होकर राजा ने इन ब्राह्मणों को सतलुज के निकट ही दो भौलियां जमीन जागीर के रूप में दे रखी थी। एक भौली में कोई १२ घुमाउं जमीन होती थी। समय बीतता गया। गढ़वालियों की उस जागीर के पास ही कुछ गार्गीय ब्राह्मणों की बस्ती भी बस गई। इनके पास अपनी जमीन न थी। ये लोग राजा के पास नौकर हो गए और समय पाकर राजा का समीपत्य प्राप्त कर लिया। उन दिनों राजा गढ़वालीय ब्राह्मणों से कुछ नाराज थे। अतः मौका पाकर गार्गीय ब्राह्मणों ने राजा से कुछ जमीन के लिए प्रार्थना की। राजा ने प्रसन्न होकर गढ़वालों का वह दो भौलियां भूमि गार्गिय ब्राह्मणों को दे दी। गढ़वालीये ब्राह्मण, जिनमें कई बड़े पराक्रमी, हठी व स्वाभिमानी थे, राजा के इस निर्णय से बहुत दुखी हुए। लेकिन उस समय राजा से टक्कर लेना चट्टान से सिर टकराना था। फिर भी उनकी दशा उस चींटी के समान थी जो पैर के नीचे पिस जाने पर भी काटने की ताक में रहती है। दूसरे उस समय में राज्य धर्म-प्रधान थे। राजा अधर्म करना पाप समझते थे। धोखे से हुए पाप का प्रायश्चित भी किया जाता था। क्योंकि राजा से टक्कर लेना प्रजा के वश की बात न थी फिर भी किसी न किसी रूप में राजा से अपनी नाराजगी प्रकट करने व अपनी बात मनवाने का कोई न कोई ढंग था। इन सब में मुख्य

'जुब्बा* प्रथा' थी। राजा अधर्म से डरते थे। राज्य में ब्राह्मण व गाय पूज्य थे। ब्रह्म हत्या या गऊ-हत्या से राजा बहुत ही डरते थे। अतः यह 'जुब्बा-प्रथा' ब्रह्म-हत्या व गऊ-हत्या का ही एक रूप था। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि ये जुब्बे क्या होते थे।

राजस्थान की वीर राजपूत वीरांगनाओं की जौहर प्रथा को कोई भी देशवासी भूला नहीं है। ये वीर राजपूत रानियां देश व वंश की आन की खातिर अवसर आने पर जीवित जल जाया करती थीं। कहलूर की यह जुब्बा-प्रथा भी राजस्थान की जौहर-प्रथा से मिलती जुलती थी जिसमें कि नारियों के स्थान पर नर अपने आपको अग्नि की भेंट चढ़ा दिया करते थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पूर्व काल में प्रजा राजा से किसी भी प्रकार सीधी टक्कर लेने में असमर्थ थी। लेकिन जब कभी भी ब्राह्मण लोग राजा को अन्याय करते या उन्हें गलत तरीके से तंग करते पाते थे तो वे लोग जीवित आग में जल कर राजा को 'हत्या' लगाने की कोशिश करते थे। इसके लिए 'सुराड़' नामक घास का एक बहुत बड़ा झोंपड़ा सा बना लिया जाता था। इसमें कई मन सूखी लकड़ी, घास और बांस की टहनियां डाल दी जाती थीं। झोंपड़े के भीतर एक या दो ब्राह्मण स्वेच्छा से ईश्वर-मनन में लीन होकर बैठ जाते थे। इनके पास एक गाय, एक चिड़िया, एक बिल्ली व फसल के सिट्टे रख दिए जाते थे। किसी विशेष निर्धारित, दिन पर इस झोंपड़े में आग लगा दी जाती थी और अन्दर के सभी प्राणी जीवित प्राणों की आहुति दे देते थे। इससे राजा को ब्रह्म-हत्या व गऊ-हत्या लगती थी जो कि सैंकड़ों अपराधों की सज़ा से भी अधिक मानी घाती थी। घास-फूंस से इसी प्रयोजनार्थ बनाये गए ये झोंपड़े 'जुब्बे' कहलाते थे। राजा धार्मिक स्वभाव के होने के कारण ऐसे मौके नहीं आने देते थे या इनको टालने का भरसक प्रयत्न करते थे चाहे वह बल पूर्वक ही क्यों न हों। तो जब राजा हीराचन्द ने गढ़वालीय ब्राह्मणों की जागीरें छीन कर दूसरों को दे दीं तो उन्हें बहुत दु.ख हुआ। उन्होंने राजा की बड़ी मिन्नत की लेकिन राजा का निर्णय हिमालय के समान अटल था। कोई चारा व सहारा न पाकर इन ब्राह्मणों ने 'जुब्बों' का सहारा लेने का निर्णय किया। क्योंकि अब यही राजा से रोष प्रकट करने और फरियाद करने का अन्तिम उपाय था। गुग्गा-गेहड़वीं के पास ही 'जुब्बे' निर्मित किए गए। घेपल और रवालू नामक दो ब्राह्मण स्वेच्छा से आत्म-दाह के लिए भगवान की माला जपते हुए 'जुब्बों' में बैठ गए। उनके पास ही एक गाय, कुछ चिड़ियां व एक बिल्ली भी बांध दी गई। शेष ग्राम वासियों ने दिन-दहाड़े आस-पास की बस्तियों में लूट-मार शुरू कर दी। लूट का सारा माल ला कर 'जुब्बों' में रख दिया गया। इसी समय में राजा को इस लूट-मार व जुब्बा निर्माण का समाचार मिल गया। राजा ने इस छोटे से विद्रोह को दबाने के लिए और विद्रोहियों को सजा देने के लिए बिलासपुर से सेना भेजी। उस काल में सेना आज की तरह प्रशिक्षित व हथियारों से लैस नहीं होती थी। तलवार, भाला, बरछा, बांस की लाठियां व कुछेक बन्दूकें युद्ध के हथियार थे। क्योंकि सतलुज पर कोई पुल न था इस लिए सेना ने नाव द्वारा 'झलल' के स्थान पर नदी को पार किया। सेना के प्रस्थान की थोड़ी सी झलक इन बिलासपुरी लोक-गीतों की पंक्तियों से भी मिलती है :—

*शब्द 'जुब्बा' को बिलासपुर में कहीं-कहीं 'जुग्गा' भी कहा जाता है।

झल्ला तेरा पत्तन जे पया हुण, फौजां आई खड़ियां वार,
उठदे बैठदे ज्वान क्वाला कोंह्दे, बिच कई-कई चरूएदार।

आखिर सेना ने सेनापति निरंजनसिंह के नेतृत्व में गढ़वालियों पर धावा बोल दिया। लेकिन ये ब्राह्मण भी चुप न बैठे थे। इन्हें पहले ही खतरे का आभास था। अतः इन्होंने भी एक सुदृढ़ मोर्चा-बन्दी कर रखी थी। इनमें गुलाबा व ज्योति अच्छे निशानेबाज़ व साहसी थे। बड़े जोर का मुकाबला हुआ। लेकिन गुलाबा के हाथों सेनापति निरजन मारा गया। तत्पश्चात् उसका लड़का भी घायल हो गया। सेना में भगदड़ मच गई और इसे काफी पीछे हटना पड़ा। जितने में राजधानी से और सहायता आती उतने में ब्राह्मणों ने जुब्बों में आग लगा दी। इनमें बैठे सभी प्राणी भस्म हो गए। राजा को जो हत्या लगनी थी वह लग ही गई। लेकिन गढ़वालीय ब्राह्मणों की चिन्ता कम न हो सकी क्योंकि उन्हें अब राजा का कोप-भाजन बनने का डर था। इस लिए सभी ब्राह्मण रातों रात गांव छोड़ कर कहलूर की सीमा पार करके कांगड़ा रियासत में प्रवेश कर गए। इस समाचार को सुन कर राजा बहुत क्रोधित हुआ। उसने अपने बज़ीर काहनसिंह को भी, जो इन गढ़वालीय ब्राह्मणों का पड़ौसी था, इस आधार पर देश-निकाला दे दिया कि उसने भी इस षड्यन्त्र में ब्राह्मणों की सहायता की थी। तत्पश्चात् राजा ने भाम्मा (एक मन्त्री) तथा नांगलू (तहसीलदार) की सहायता से झूठे प्रलोभन देकर और कोई दण्ड न देने का वचन देकर विद्रोही ब्राह्मणों को वापिस रियासत में बुलाया। लेकिन राज्य-सीमा पार करते ही इन्हें कड़ियां व बेडियां डाल दी गईं। गुलाबा और ज्योति को अजन्म कारावास की सज़ा देकर त्यून के किले में बन्द कर दिया। किन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् गुलाबा को छोड़ दिया जो कि फिर गेहड़वीं में आकर रहने लगा। कहलूर के इतिहास में इस गढ़वाल-वंशीय ब्राह्मणों का विशेष स्थान रहा है। इसी वंश के श्री भण्डारी राम ने द्वितीय विश्व महायुद्ध में अपनी बहादुरी के जौहर दिखा कर विक्टोरिया-क्रास प्राप्त करके भारत के ही नहीं अपितु विश्व के सूरमाओं में विशिष्ट स्थान पाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहलूर की यह 'जुब्बा-प्रथा' वीरता और साहस के क्षेत्र में किसी भी तरह से राजपूतों की 'जौहर-प्रथा' से कम न थी।

राजकीय उच्च विद्यालय नम्होल,
जिला बिलासपुर (हि०प्र०)

●★●

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक : चांदनी ।
लेखक : श्री अनिल भारती ।
प्रकाशक : बिन्दु प्रकाशन, २२५ न्यू लाजपतराय मार्किट, दिल्ली ११०००६ ।

पहली कृति — रुपहली कृति

"मैं सायरा के लिए सब कुछ कर सकता हूं, पर अपनी इकलौती बच्ची को एक (हिन्दू) काफिर के हवाले नहीं कर सकता। ......मेरी बिरादरी वाले क्या कहेंगे ? मैं अपनी क़ौम को मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहूंगा। ......लोग मेरे नाम पर थूकेंगे। मेरा मजहब और मेरा दिल ही गवाही नहीं देता। बेगम ! सायरा के लिए मैं अपने ईमान से नहीं गिर सकता।"—नवाब सादिक अली अपने दीन-ईमान की दुहाई दे रहे थे, जबकि सायरा अपने प्यारे राम से मिलने की लालसा दिल में लिए बेहोश पड़ी थी, उसकी मृत्यु आसन्न थी। सायरा के जीवन का चिराग़ बुझ गया। लेकिन दो दिलों के मिलने के मार्ग में अवरोध पैदा करने वाला अन्धकार निबिड़ था, निबिड़ ही रहा। इस प्रकार अनिल भारती ने अपने उपन्यास **'चांदनी'** में इस सामाजिक समस्या को उघाड़ा है। समस्या उभरी है, पर समाधान नहीं। समाधान शायद उपन्यास से बाहर है।

उपन्यास नायक-विहीन है, थैकरे के 'वैनिटी फेअर' की तरह। नायिका सायरा (जिसके पहले जन्म का नाम चांदनी था) ही इसकी प्रधान पात्र है। पूरबली स्मृतियां, शिमला और दिल्ली की यादें उसके जीवन में अनवरत एक टीस पैदा करती हैं। पिछले जन्म के हिन्दू संस्कार अब भी उसके संस्कार हैं, लेकिन वह मुस्लिम परिवार में जन्मी है। इस प्रकार वह अपने परिवेश से कटी है, उसके जीवन में एक तीव्र सन्दर्भहीनता है। वह एक त्रस्त पत्ते की तरह हवा में स्पन्दित है। इस प्रकार सायरा के सहारे आधुनिक जीवन-वास्तव को चित्रित किया है अनिल भारती ने।

उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है—सायरा के अतिरिक्त सभी की भाषा उर्दू-प्रधान है। "बस तोबा···घुंघराले बाल, नूरानी किताबी चेहरा, लम्बी बंद पलकें, तीखी नाक, पतले-पतले गुलाबी होंठ, स्वस्थ और यौवन से भरपूर गोरा व मुलायम शरीर···शराबी, गुलाबी, लोचदार, मधुर उमंग-तरंग और जवानी से भरपूर हुस्न मेरे सामने सोया हुआ है और मेरे दिल-दिमाग को हिलाये जा रहा है। मैं जागते हुए भी आगे नहीं बढ़ रहा···। मेरा अब सब कुछ हिल चुका है।···'" या बढ़िया शब्द-चित्र और क्या सुन्दर, सजीव चित्रण अनवर के भीतर चल रहे अन्तर्द्वन्द्व का !

'चांदनी' भारती की प्रथम औपन्यासिक कृति है, तथापि यह लेखक के एक प्रौढ़ शिल्पी होने की गवाही देती है।

●

पुस्तक : **एक टुकड़ा धूप।**
लेखक : **ओम प्रकाश सारस्वत।**
प्रकाशक : आर्य बुक डिपो, ३० नाई वाला, करोल बाग, नई दिल्ली।

कीर्ति-पटल पर :

ओम् प्रकाश सारस्वत के कविता-संग्रह **'एक टुकड़ा धूप'** में सम्मिलित अधिसंख्या कविताओं में आवेग है, आवेश है।

कविता बावड़ी से गंगा तक
एक ऐसी अन्तः सलिला है
जिस पर जितना तुम्हारा
उतना ही अधिकार है हमारा भी

यह आक्षेप है उन पर जो हिन्दी कविता को अपनी, केवल अपनी क्रीतदासी समझते हैं। सारस्वत शरक्षेप करते हैं उस अखबार पर जो 'मंच से उछाले गए बहु-पक्षीय झूठ का/टिबल पर गढ़ा गया एक पक्षीय बयान है', प्रजातन्त्र के उस रूप पर जो 'नगरपालिका की नालियों में बन्द है।'

जब कवि-हृदय इधर-उधर देखता है तो पाता है कि 'अब ज़िन्दगी/छुई-मुई सी शरमाती है।' शंका का भाव स्पष्ट दिखायी देता है जब वह लिखते हैं कि 'फिर तुम्हीं कहो। मैं उस प्रकाश को कैसे सराहूं। जिसे मैंने देखा ही नहीं।' शंका समय पाकर हीन-ग्रन्थि को बलवती करती है। कवि महसूस करता है कि—

और एक मैं हूं
जिसे लगता है
कि वह
उस अवांछित पौधे के समान है
जो बासमती में
'पल्लर' कह के
तर्जित किया जाएगा

तर्जित किये जाने की इस आशंका से सारस्वत 'त्रस्त है/अपने पराये से।' इस संत्रास के कारण वह अनुभव करते हैं कि 'मैं असंग हो रहा हूं/मुझे मरना भी नहीं आया।' यह छुई-मुई का सा भाव, यह सन्त्रास का अहसास, यह मुमूर्षा, और मर न सकने की यह विवशता इन कविताओ में आधुनिकता के बोध को उजागर करती हैं।

यद्यपि इस संग्रह में शामिल अधिकांश कविताएं आधुनिकता के बोध तथा व्यंग्य की प्रखरता से अनुप्राणित होने के कारण बौद्धिकता से ओत-प्रोत हैं, तथापि कुछ कविताएं भावना की भूमि से प्रस्फुटित हुई हैं। इस दृष्टि से 'ऋत्विक् पर्व' तथा 'बर्फ' पठितव्य हैं। फिर भी इन कविताओं में बौद्धिकता का स्वर ही मुखर तथा प्रखर है।

बौद्धिकता के संदर्भ में इन कविताओं की भाषा प्रायः सपाटबयानी से सम्पृक्त है, तथापि अभिव्यंजना का दूसरा रूप यत्र-तत्र मिल जाता है जिसका शब्द-चमत्कार सहृदय पाठक के हृदय और

मस्तिष्क को झकझोर जाता है। इसका एक उदाहरण है नक्षत्रों के सहारे की गयी अपूर्व व्यंजना—

आखिर क्यों नहीं होते या हो सकते हैं हम
यकसां, ज्योति-बितरक सूर्य
मैत्री के पुनर्वसु, स्नेह-आश्लेषा
या मधु विश्वास की भरणी
या रसवती प्रेम-आर्द्रा
यह क्या बात है कि हम कभी मार्गी नहीं होते
या सदा शनि की तरह गुरु के घर में अड़ कर
सज्जनों से द्वेष ही करते हैं

व्यंजना-शक्ति अनूठी है जिसके फल-स्वरूप 'यहाँ हर आंख सुनती है/हर कान निरखता है' और 'स्वप्न/स्वप्न का विस्मरण' बनने को अभिशप्त है। कविता लचीली है, लेकिन आन्तरिक तुक इसकी जान है।

रक्षक या भक्षक वह
शहर के पापों के पुण्यों का तक्षक वह

आदि अंशों की आन्तरिक तुक तथा लयमयता इन कविताओं को सप्राण बनाती हैं।

सारस्वत ने कुछ अपने प्रतीक चुने हैं, अपने बिम्ब बनाये हैं। 'यहां हर दिन बदमाशी करता है/रात का तो केवल नाम है बदनाम' में कुख्यात व्यक्तियों को 'रात' द्योतित करती है और काले मुख पर उज्जवल बुर्का ओढ़े विचरने वालों को 'दिन' प्रतीकित करता है। 'विज्ञापन की टांगों पर/संयम की शालें सदा छोटी ही पड़ती हैं' में नयी बिम्ब योजना व्यंजना की श्रीवृद्धि करती है।

इस संग्रह को पाठकों तक पहुंचाकर सारस्वत ने कविता के शुभ्र यज्ञ में कीर्ति-पटल पर पांव धरे हैं।

समीक्षक
कृष्णचन्द्र शर्मा
संयुक्त सचिव (कार्मिक)
हिमाचल प्रदेश सरकार, शिमला १७१००२

—:००:—

बजौरा (कुल्लू) में महादेव का मन्दिर
(विवरण के लिए देखिए '**प्राचीन स्मारकों का रक्षण**' लेख)

FORM IV

(See Rule 8)

1. *Place of Publication*	...	**Simla.**
2. *Periodicity of Publication*	...	**Quarterly.**
3. *Printer's Name*	...	**Shri Munshi Ram.**
Nationality	...	**Indian.**
(a) Whether a citizen of India	...	**Yes.**
(b) If a foreigner, the country of Origin		**N.A.**
Address	...	**Naveen Printing Press, 49-A, Main Market, Bilaspur (H.P.)**
4. *Publisher's name*	...	**Shri M. R. Thakur.**
Nationality	...	**Indian.**
(a) Whether a citizen of India	...	**Yes.**
(b) If a Foreigner, the country of origin		**N.A.**
Address	...	**Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Pari-Mahal, Simla.**
5. *Editor's Name*	...	**Shri M.R. Thakur.**
Nationality	...	**Indian.**
(a) Whether a citizen of India	...	**Yes.**
(b) If a Foreigner, the country of origin		**N.A.**
Address	...	**Secretary, Himachal Academy of Arts Culture and Languages, Pari-Mahal, Simla-9.**
6. *Names and addresses of individuals who own the newspaper and are partners or shareholders holding more than one percent of the Total Capital*		**Himachal Kala, Sanskriti, Bhasha Academy Pari-Mahal, Simla-9.**

I, M. R. Thakur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(Sd.) **M. R. Thakur,**
Secretary.

H.A.A.C.L. आर०एन० 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा 'नवीन प्रिंटिंग प्रेस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।